उपन्यास : मोहनलाल चुन्नीलाल धामी कृत

पूर्वभव का अनुराग

रूपान्तरकार : आगममनीषी मुनि दुलहराज

इसमें मुख्यतया तीन पात्रों की जीवन्त कहानी है—पारधी, चक्रवाक और चक्रवाकी। पक्षियों में कितना प्रगाढ़ प्रेम और स्नेह बन्धन होता है? चक्रवाकी अपने प्रियतम चक्रवाक के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देती है। निरपराध प्राणी की हत्या हो जाने पर शिकारी पारधी का मन कितना आकुल-व्याकुल होता है और वह भी एक मूक पक्षी की विरह-व्यथा को न सह सकने के कारण उसी चिता में अपने प्राणों की आहुति दे देता है। पूर्वभव का यह अनुराग आगे भी संक्रान्त होता है। अनुराग के अनुबन्ध के कारण पूर्वजन्म की स्मृति होना, पुनः पूर्वभव के पति से मिलना, फिर मुनि के धर्मोपदेश से प्रबल विरक्ति होना, पति-पत्नी दोनों का दीक्षित होना आदि-आदि इस उपन्यास के घटक हैं।

-आदिवचन से

मोहनलाल चुन्नीलाल धामी कृत

पूर्वभव का अनुराग

रूपान्तरकार

आगममनीषी मुनि दुलहराज

जैन विश्वभारती प्रकाशन

लाडनूं – ३४१३०६ (राजस्थान)

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (०१५८१) २२२०८०/२२४६७१
ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

© **जैन विश्व भारती**

संस्करण : मार्च २०११

सौजन्य : पूज्य पिताजी 'श्रद्धानिष्ठ श्रावक' स्व. ख्यालीरामजी सिंघी की
पुण्य स्मृति में
अभय कुमार-मंजु देवी सिंघी
लुधियाना

मूल्य : ६०/- (साठ रूपया मात्र)

मुद्रक : पायोराईट प्रिन्ट मीडिया प्रा. लि., उदयपुर फोन : 2418482

आशीर्वाद

श्रमनिष्ठा, सेवानिष्ठा और श्रुतनिष्ठा–इन त्रिवेणी में जिन्होंने अपने जीवन को अभिस्नात किया है, वे हैं–**मुनि दुलहराजजी।** मेरी सेवा में अहोभाव से संलग्न रहे हैं। इन्होंने सेवा के साथ श्रुत की उल्लेखनीय और अनुकरणीय उपासना की है। मेरे साहित्य-संपादन का कार्य वर्षों तक जागरूकता के साथ किया। आगम संपादन के कार्य में अनन्य सहयोगी रहे। **'आगममनीषी'** संबोधन इनकी सेवाओं का एक मूल्यांकन है। इनका हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि भाषाओं पर अच्छा अधिकार है। इसीलिए ये संस्कृत, प्राकृत साहित्य के भाषान्तरण में सफल रहे। इन्होंने अनेक गुजराती उपन्यासों का भी हिन्दी भाषा में सरस और प्रांजल शैली में रूपान्तरण किया है। प्रस्तुत कृति **'पूर्वभव का अनुराग'** उसकी एक निष्पत्ति है। इससे पाठक वर्ग लाभान्वित हो सकेगा।

१ मई २०१० **आचार्य महाप्रज्ञ**

सरदारशहर

आदिवचन

जीवन एक रंगमंच है। संसार का हर प्राणी इस मंच पर आता है, विविध प्रकार के अभिनयों की प्रस्तुति देता है और चला जाता है। उपन्यास उन जीवन्त अभिनयों को प्रस्तुत करने का एक माध्यम है। कुछ घटनाएं दृश्य होती हैं, कुछ श्रव्य होती हैं और कुछ पठनीय होती हैं। उपन्यास उन घटनाओं को रोचकता से पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। मनुष्य जीवन के उतार-चढ़ावों की घाटी को कैसे पार करता है, अन्त:करण में कब और कैसे अच्छे-बुरे भावों का आरोहण-अवरोहण होता है, कितनी-कितनी प्रेरणाएं और अभिप्रेरणाएं उसके हाथ जुड़ती हैं—इन सब तथ्यों को प्रस्तुति देने वाला होता है उपन्यास। आज के इस तनावग्रस्त युग में यह मानसिक थकान को मिटाने वाला और नई पीढ़ी की दिशा को बदलने वाला एक टॉनिक है।

प्रस्तुत उपन्यास को वैद्य मोहनलाल चुन्नीलाल धामी ने 'तरंगलोला' नाम से गुजराती भाषा में लिखा। मैंने इसे हिन्दी में रूपान्तरित कर इसका नाम **'पूर्वभव का अनुराग'** दिया है। इस उपन्यास का आधार आचार्य पादलिप्त द्वारा प्राकृत भाषा में लिखित 'तरंगवती' नामक सरस कथा है। इसके दस हजार पद्य थे। यह जैन प्राकृत कथा साहित्य का आदिस्रोत है। अनेक जैन आचार्यों ने इस कथा का अपने साहित्य में नामोल्लेख किया है। आचार्य शीलांक 'चउपन्नमहापुरिसचरियं' में लिखते हैं—

सा णत्थि कला तं णत्थि लक्खणं जं न दीसइ फुडत्थं।
पालित्तपाइयविरइय तरंगयइयासु य कहासु।।

इस ग्रन्थ के आधार पर नेमिचन्द्रगणी ने उन्नीस सौ बयालीस गाथाओं में तरंगलोला नामक ग्रन्थ लिखा। उसी ग्रन्थ के आधार पर यह उपन्यास लिखा गया। इसमें मुख्यतया तीन पात्रों की जीवन्त कहानी है—पारधी, चक्रवाक और चक्रवाकी। पक्षियों में कितना प्रगाढ़ प्रेम और स्नेह बन्धन होता है? चक्रवाक अपने प्रियतम चक्रवाक के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देती है। निरपराध प्राणी की हत्या हो जाने पर शिकारी पारधी का मन कितना आकुल-व्याकुल होता है और वह भी एक मूक पक्षी की विरह-व्यथा को न सह सकने के

कारण उसी चिता में अपने प्राणों की आहुति दे देता है। पूर्वभव का यह अनुराग आगे भी संक्रान्त होता है। अनुराग के अनुबन्ध के कारण पूर्वजन्म की स्मृति होना, पुनः पूर्वभव के पति से मिलना, फिर मुनि के धर्मोपदेश से प्रबल विरक्ति होना, पति-पत्नी दोनों का दीक्षित होना आदि-आदि इस उपन्यास के घटक हैं।

बहुत वर्षों से यह उपन्यास नए संस्करण की प्रतीक्षा में था। उपन्यासरसिकों की रुचि और मांग को देखकर इसका शीघ्र प्रकाशन हो जाना चाहिए था। परन्तु कुछेक अपरिहार्य कारणों से इसका प्रकाशन नहीं हो सका। जैनविश्व भारती ने इसके प्रकाशन का दायित्व लिया और अब यह शीघ्र प्रकाशित होकर लोगों की रुचि और उनकी उत्कंठा को तृप्त कर सकेगा, ऐसी आशा है।

इस सारे कार्य को निष्पत्ति तक पहुंचाने में जिस लगन और परिश्रम से दो मुनियों—मुनि राजेन्द्रकुमारजी और मुनि जितेन्द्रकुमारजी ने अति निष्ठापूर्वक कार्य किया है, वे साधुवाद के पात्र हैं।

आचार्य तुलसी मेरे दीक्षा गुरु थे। उन्होंने मुझे अनेक दिशाओं में विकास करने का अवसर दिया। उनकी अनन्त उपकार की रश्मियों को आत्मसात् करता हुआ मैं उनके प्रति श्रद्धाप्रणत हूं।

आचार्य महाप्रज्ञ के पास मैं एक लम्बे समय तक रहा। उनकी अत्यधिक समीपता को साधने और पर्युपासना करने का स्वर्णिम अवसर मिला। उन्होंने मेरे लिए वह सब कुछ किया जो एक अल्पज्ञ को बनाने के लिए होता है। वे मेरे ज्ञानदाता और भाग्यनिर्माता थे। उनके चरणों में बैठकर मैंने बहुत कुछ पाया। उनका इस संसार से विदा होना मेरे जीवन की असहनीय घटना है। काश! आज वे होते तो प्रस्तुत उपन्यास का लोकार्पण उनके करकमलों द्वारा होता। शायद यह नियति को मान्य नहीं था। इसलिए नियति अनियति ही रह गई।

आचार्य महाश्रमण तेरापंथ धर्म संघ के ग्यारहवें पट्टधर हैं। उनकी करुणा और वत्सलता तेरापंथ के साधु-साध्वियों के लिए जीवातु बने, यही मेरी कामना है। उनके प्रति मैं अपनी आस्था को उंडेलता हुआ भावभीनी अभिवन्दना प्रस्तुत करता हूं।

उपन्यासरसिक पाठक प्रस्तुत उपन्यास से शिक्षा ग्रहण कर अपनी दिशा और दशा को बदलकर जीवन को रूपान्तरित कर सकेंगे, ऐसी तीव्र अभीप्सा के साथ·····

सरदारशहर, सभा भवन
२५ जुलाई २०१०

आगममनीषी मुनि दुलहराज

१. वासरी

आसोज का महीना। शरद् पूर्णिमा की निशा। आकाश में चांद अपनी सोलह कलाओं से चमक रहा था। शरद् पूर्णिमा के चांद की ओर देखने वाले को ऐसा लगता कि चांद से झरने वाला अमृत उसकी आंखों की राह से हृदय में उतर रहा है।

जैसे वसंत ऋतु प्राणी मात्र के मन को कल्लोलित करता है, वैसे ही शरद् ऋतु भी सचराचर विश्व को आनन्दविभोर बना देता है।

वसंत ऋतु में नर-नारी कामदेव के मंदिर में अपनी मनोकामना पूर्ण करने के लिए जाते हैं, अर्चा-पूजा करते हैं, वैसे ही शरद् ऋतु में चन्द्रमा से आरोग्य की याचना करते हुए उत्सव मनाते हैं।

शरद् का चांद केवल मनुष्यों के लिए ही प्रेरक नहीं होता, वह सृष्टि के प्रत्येक अंश के लिए औषधरूप होता है। शरद्चन्द्र की किरणों से स्नात औषधियां अमृत का संचय कर अपने-अपने गुणधर्म को स्थिर बनाती हैं।

आसपास में सघन वनप्रदेश है। इस निबिड वनप्रदेश में एक पल्ली है। इस पल्ली में केवल पारधियों के ही परिवार रहते थे। पारधियों के दो सौ परिवार दो कोस की परिधि में दो-दो, चार-चार के झुमके के रूप में बसे हुए थे। इस पल्ली का कोई नाम नहीं था। इस गांव पर न किसी का अधिकार था और न यहां किसी की हुकूमत थी। न राजा था और न कोई अधिकारी।

मात्र व्यवहार और व्यवस्था की दृष्टि से यह पल्ली अंगदेश के राजा के वनप्रदेश में है····· किन्तु अंगदेश के राजा का अधिकारी या रक्षक यहां कोई नहीं रहता। यहां से अंगदेश की प्रसिद्ध राजधानी चंपा नगरी केवल बीस कोस की दूरी पर थी।

इतनी भव्य, रमणीय और समृद्ध चंपा नगरी इतनी निकट होने पर भी पल्लीवासी लोग वहां जाने के लिए कभी नहीं ललचाते थे। उनका सारा संसार और व्यवहार उस वनप्रदेश में छितरा हुआ था।

इस पल्ली के सभी दो सौ परिवार पारस्परिक मेलजोल से रहते थे और अपने द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करते थे। इस विधि से उनकी अनेक पीढ़ियां बीत चुकी थीं।

पारधी परिवारों का जीवन सामान्य खेती और शिकार पर निर्भर था। वे कोई वस्तु खरीदने के लिए अन्यत्र नहीं जाते थे। उनकी आवश्यकताएं अत्यन्त सीमित और वस्तुओं का परिमाण अत्यन्त अल्प था।

वे अपने पहनने के लिए वस्त्र वृक्षों की छाल से स्वयं बना लेते थे। वे भेड़ों की ऊन तथा जंगली चूहों के बालों से वस्त्र निर्माण कर लेते थे। वे व्याघ्रचर्म, मृगचर्म आदि का भी उपयोग करते थे।

खाद्य सामग्री कृषि से पूरी हो जाती थी और फल-फूलों के लिए वनप्रदेश समृद्ध था।

प्रत्येक पारधी के घर में दस-बीस भेड़ें, बकरियां और दो-चार गायें अवश्यं होती थीं। इनका दूध उन पारधियों के लिए अमृततुल्य होता था। वे मक्खन, दही, छाछ का झंझट नहीं करते थे।

कोई पारधी बीमार होता तो उसके लिए आवश्यक औषधियां वनप्रदेश से ही प्राप्त हो जाती थीं। ये पारधी प्राय: निरोग और हृष्ट-पुष्ट रहते थे। वे प्राय: चमत्कारिक जड़ी-बूटियों के ज्ञाता और प्रयोक्ता थे।

इनके मुख्य शस्त्र थे–धनुष-बाण, छुरिका, तलवार और भाला। इन सभी शस्त्रों का निर्माण ये स्वयं कर लेते थे।

इस वनप्रदेश में हाथियों की बहुलता थी। पारधी लोग हाथी दांत से मालाएं, स्त्रियों के लिए कड़े, शृंगार के अन्यान्य साधन स्वयं बना लेते थे। कभी-कभी बाहरी प्रदेश के व्यापारी यहां आ पहुंचते और हाथी दांत के बदले चांदी के आभूषण दे जाते।

पारधी परिवारों में दो वस्तुओं का प्रचुर प्रचलन था–तंबाकू और मदिरा। इन दोनों वस्तुओं का उत्पादन यहीं हो जाता था। प्रत्येक परिवार में मदिरा के पांच-सात भांड भरे हुए मिल जाते थे। मदिरा का उत्पादन प्रत्येक घर करता था। तंबाकू की खेती होती थी और उसका उपयोग पीने-सूंघने में होता था।

इस प्रकार पारधियों की सारी आवश्यकताएं यहीं से पूरी हो जाती थीं। वे पूर्ण स्वावलंबी जीवन जीते थे। वे अपना जीवन-निर्वाह आनन्दपूर्वक कर रहे थे।

इस वनमार्ग से कोई पथिक आने का साहस नहीं करता था और यदि कोई भूला-भटका आ भी जाता तो पल्लीवासी उसे पीड़ित नहीं करते थे। उसे निर्भय मार्ग पर पहुंचा देते थे।

उनका शौक कहें या व्यवसाय कहें या प्रवृत्ति कहें, वह बहुधा शिकार का ही था। हाथी, सिंह, वराह आदि का शिकार करने में वे अपनी मरदानगी समझते थे। शिकार के लिए भी कुछ नियम निर्धारित थे। जैसे–यदि हाथी हथिनियों के साथ विचरण कर रहा हो तो उसका शिकार वर्ज्य था। सगर्भा मादा प्राणी पर शस्त्र-प्रहार वर्जनीय था। कोई भी हिंसक प्राणी रतिक्रीड़ा में हो, तो वह अवध्य

माना जाता था और जिस पशु के छोटे-छोटे बालक हों, वह भी वध योग्य नहीं माना जाता था। जो शिकारी इन नियमों की अवहेलना करता वह दोषी गिना जाता था और उनका मुखिया उनको उपालंभ भी देता था।

सभी पारधी परिवार एकत्रित होकर एक पारधी को अपना मुखिया मान लेते और वह मुखिया व्यवस्था का संचालन करता और सभी नियमों की परिपालना में सचेष्ट रहता। जब कभी परस्पर विवाद या संघर्ष हो जाता तो वह मुखिया तथा अन्य निश्चित पांच वृद्ध पारिधियों की मंडली जो निर्णय देती, वह सबके लिए मान्य होता था।

पारधी जाति में छोटे-बड़े अनेक उत्सव मनाए जाते थे। पारधी लोग अक्षरज्ञान से मुक्त थे, परन्तु सूर्य, चन्द्र, ग्रह, ऋतु आदि के आधार पर सब कुछ जान लेते थे। फाल्गुन और आश्विन की पूर्णिमा—ये दो दिन उनके लिए परम आनन्दप्रद और रसदायी होते थे। इनमें भी शरद् पूर्णिमा की रात्रि इनके लिए दीपावली के समान होती थी।

आज यही आश्विन पूर्णिमा है। शरद् ऋतु की यह त्रियामा उनके लिए शतयामा बन रही है। आज का चांद अमृत की वर्षा कर पृथ्वी को नवचेतना प्रदान कर रहा है।

पारधी युवक, युवतियां, वृद्ध और बालक—सभी आज एक मैदान में एकत्रित हुए हैं। कुछेक मदिरा की मस्ती में डोल रहे हैं और कुछेक वेणुवीणा आदि वाद्य बजाकर आनन्दविभोर हो रहे हैं। कोई सामूहिक नृत्य में लीन है तो कुछेक युवतियों के समूह धरती को प्रकंपित करती हुई रास-नृत्य में मशगूल हैं। उनके चर्मवाद्य और तंतुवाद्य गीतों के साथ तालयुक्त लय में स्वरलहरियों को बिखेर कर चन्द्रमा का अभिनन्दन कर रहे हैं।

गान, तान, आनन्द, मौजमस्ती और नृत्य के कारण सारा वनप्रदेश झंकृत हो उठा है और यह पल्ली मानो गांधर्व नगर की भांति शोभित होने लगा।

जब चांद आकाश के मध्य आया तब पारधी के मुखिया ने शृंग वाद्य को बजाया। उसकी आवाज चारों दिशाओं में फैल गई और तब सारे रास-नृत्य बंद हो गए और सभी मुखिया पारधी की ओर आने लगे।

कुछ ही समय में सभी स्त्री-पुरुष, बालक और वृद्ध उस मैदान में आ पहुंचे जहां मुखिया पारधी तथा कुछेक वृद्ध व्यक्ति खाटों पर बैठे थे।

मुखिया पारधी गंभीर होकर हर्षभरे शब्दों में बोला—'भाइयो! अपने रीति-रिवाज के अनुसार प्रतिस्पर्द्धा का समय हो गया है। सभी आकाश की ओर देखें। चांद भगवान गगन के मध्य आ गए हैं। आज की इस प्रतिस्पर्द्धा में मेरी पुत्री वासरी खड़ी हो रही है। जो युवक भाग्यशाली होगा, वह इसे प्राप्त कर सकेगा, उसे घरवाली बना सकेगा।'

इतना सुनते ही प्रत्येक पारधी जवान का चित्त और नेत्र चंचल हो उठे। सभी की दृष्टि स्त्रियों की पंक्ति की ओर गई। सब ने देखा कि उस पंक्ति में नवयौवना रूपवती षोडशी वासरी खड़ी है, जिसका तेज अन्यान्य पारधी स्त्रियों से भिन्न था। सब की दृष्टि उस पर स्थिर हो गई।

मुखिया की यह कन्या सभी पारधी युवतियों में आज श्रेष्ठ लग रही थी। उसके उन्नत उरोज उस चांदनी में स्पष्ट नजर आ रहे थे। उसकी केशराशि मानो धरती को गुदगुदा रही हो, ऐसी प्रतीति हो रही थी। उसके नयनों में यौवन की माधुरी फल्गु नदी के प्रवाह की भांति मुक्तरूप से नाच रही थी। उसके सुडौल शरीर में तथा अंग-प्रत्यंग में झलकती जवानी दर्शक को क्षणभर के लिए पागल बना देती थी। सबको यही लगता कि यह कोई कामनगरी वनरानी यहां आ पहुंची है।

मुखिया ने कहा—'जो जवान एक ही बाण से वृक्ष पर रखे गए सातों घड़ों को एक साथ बींध देगा और कल पकड़े गए वनमहिष के साथ बिना शस्त्रास्त्रों के लड़कर विजय पा लेगा वह मेरी पुत्री वासरी का स्वामी बन सकेगा। जो मेरी पुत्री को पाना चाहें, वे सब तैयार हो जाएं।'

नियम के अनुसार इस प्रतिस्पर्धा में केवल कुंआरे युवक ही भाग ले सकते थे। लगभग सैंतीस स्वस्थ और बलिष्ठ पारधी युवक अपने-अपने धनुष-बाण लेकर आगे आए और एक पंक्ति में खड़े हो गए।

उस मैदान के उत्तर दिशा की ओर एक विशाल वृक्ष था। उसकी एक शाखा पर सात घड़े एक पंक्ति में बंधे हुए थे। घटवेध की योजना यह थी कि एक ही बाण से सातों घड़े बींधने होंगे और सातों घड़ों को बींध कर वह बाण बाहर आकर धरती पर गिर जाए, ऐसा करना होगा। वृक्ष की कुछ दूरी पर सात घड़ों की अनेक घट मालाएं तैयार रखी हुई थीं और चार पारधी उनकी सुरक्षा कर रहे थे।

वासरी ने तिरछी दृष्टि से स्पर्द्धा में भाग लेने वाले पारधी जवानों की ओर देखा और फिर नीचे बैठ गई। उसकी दो सखियां उसी के पास बैठ गईं। एक सखी ने उसके कान में धीमें स्वरों से कहा—'अरे! तुझे प्राप्त करने के लिए तो लगता है कि जैसे आकाश ही फट गया हो।'

वासरी मौन रही।

दूसरी सखी बोली—'तेरे मन में कौन बसा है?'

वासरी इसका क्या उत्तर दे ? परिहास का उत्तर परिहास से ही दिया जाए तो उचित होता है। किन्तु वासरी स्त्री-सुलभ स्वाभाविक लज्जावश जड़-सी बन गई थी।

और अर्द्धघटिका में ही स्पर्धा प्रारंभ हो गई और स्पर्द्धक पारधियों के हाथों में धनुष-बाण चांदनी के प्रवाह में झिलमिला रहे थे।

पहला पारधी जवान घटवेध में निष्फल हुआ····· दो घटों को बींध कर उसका बाण मुड़ गया। उस युवक पारधी का मुंह फीका पड़ गया। वह नीची दृष्टि किए एक ओर खिसक गया।

मुखिया के पारधियों ने दूसरे सात घड़ों का तोरण वृक्ष पर बांध दिया।

इस प्रकार यह निशानेबाजी रसमय हो गई····· जब घटवेध का क्रम पूरा हुआ और इतने स्पर्द्धकों में से केवल तीन व्यक्ति ही इस स्पर्द्धा में सफल हुए।

इन तीन सफल पारधियों में सुदंत नामक एक जवान पारधी था। वह सभी तीनों में सशक्त, चपल और चतुर निशानेबाज और संस्कारी माना जाता था। दूसरे दोनों सफल पारधी भी वीरता के लिए प्रसिद्ध थे किन्तु वे सुदंत जैसे सुडोल, सुंदर और नयनाभिराम नहीं थे।

सैंतीस पारधी जवानों में से केवल तीन पारधी ही सफल हुए थे और यह प्रश्न सबके सामने था कि इन तीनों में से कौन वासरी को प्राप्त कर पाएगा? इसके साथ एक प्रश्न यह भी उभरा कि केवल एक ही वनमहिष पकड़ा गया है, समाधान कैसे होगा? मुखिया के साथ अन्य वृद्ध पारधियों ने इस विषय की चर्चा की। तब मुखिया ने खड़े होकर कहा—'भाइयो! वासरी को प्राप्त करने की इस स्पर्द्धा में तीन जवान सफल हुए हैं। इन तीनों में से एक को ही पसन्द करना है। हमने एक ही वनमहिष को पकड़ा है। अत: यह निर्णय किया गया है कि सामने जो वटवृक्ष है उस पर एक रस्सी से एक घड़ा टांगा जाएगा। जो पारधी युवक अपने बाण से उस रस्सी को काट डालेगा उसको वनमहिष के साथ लड़ने का अवसर दिया जाएगा।'

सभी ने इस निर्णय को हर्षध्वनि से स्वीकार किया।

शरद् का चांद अपनी संपूर्ण कलाओं से चांदनी बिखेर रहा था। मनभावन प्रकाश किन्तु वह दिवस के प्रकाश जैसा तेजस्वी तो था ही नहीं। तेजस्वी हो भी कैसे? दो सौ कदम दूर रहकर बाण से रस्सी को काटना-यह नेत्रशक्ति और निशानेबाजी की कसौटी थी। सीधा-सा लगने वाला कार्य इतना सरल सहज नहीं था।

फिर भी तीनों जवानों के हृदय आशा से नाच रहे थे। उत्साह प्रबल था और वासरी जैसी सुन्दर कन्या को पाने की तमन्ना उछल-कूद कर रही थी।

मुखिया की आज्ञा से तीनों जवान उस लटकाए हुए घट से दो सौ कदम दूर खड़े हो गए।

और निशानेबाजी प्रारंभ हुई। पहले युवक ने अत्यंत निपुणता से बाण छोड़ा'····· रस्सी कटी नहीं'····· बाण रस्सी के पास से गुजर गया।

दूसरा जवान भी निष्फल रहा।

अन्त में एक जवान बचा। अब सुदंत की बारी थी। उसकी नेत्रशक्ति और

निशानेबाजी अजोड़ थी। उसने सावधान होकर बाण छोड़ा।

रस्सी कट गई। मिट्टी का घट धड़ाम से धरती पर गिर कर फूट गया और तब पारधी नर-नारियों ने हर्षनाद से समूचे वनप्रदेश के शांत वातावरण को ध्वनित कर डाला। सारा वातावरण चपल हो गया।

दूसरे युवक पारधी आगे आए और सुदंत को हाथों में ऊपर उठा लिया।

वासरी तिरछी दृष्टि से सुदंत के स्वस्थ और श्यामसुंदर सुडौल शरीर को अनिमेष दृष्टि से देखने लगी।

मुखिया खड़ा हुआ और गर्जना करते हुए बोला—'सभी कान खोलकर सुन लें। वनमहिष जो बंधा हुआ है, अब हम उसको बंधनमुक्त करेंगे। अतः सभी स्त्री-पुरुष आस-पास के वृक्षों पर चढ़ जाएं'····· छोटे बच्चों को भी वृक्षों पर अपने पास बिठा लें।'

मुखिया की यह बात सुनते ही सभी पारधी स्त्री-पुरुष मैदान के आस-पास के वृक्षों पर चढ़ने लगे। जो वृद्ध पुरुष तथा स्त्रियां और बालक वृक्षों पर चढ़ने में असमर्थ थे, उनके लिए मजबूत लकड़ियों का एक घेरा बना हुआ था, उसमें सभी अशक्त पारधी चले गए।

पूरे मैदान में सुदंत मानव सिंह की भांति अप्रकंप खड़ा था। उसने अपने धनुष-बाण अपने एक साथी को दे दिए थे। उसने पहनी हुई धोती की मजबूत लांग लगाई। गले में पहनी हुए सारी मालाएं निकाल कर एक ओर रख दीं। उसके कानों में श्वेत शंख के कुंडल चांदनी के प्रकाश में झिलमिला रहे थे। उसके वक्षस्थल का अमुक भाग व्याघ्रचर्म से ढंका हुआ था।

एक वृक्ष पर सुरक्षित बैठे हुए मुखिया ने कहा—'सुदंत! मैदान को एक बार देख लो कि कोई उसमें रह तो नहीं गया है?'

सुदंत ने चारों ओर देखकर कहा—'नहीं, मैदान में कोई नहीं है।'

और इतने में ही मुखिया ने सींग बजाया और तब दो वृक्षों पर चढ़े दो पारधी जवानों ने दो ओर की रज्जुओं को खींचा और मजबूत लकड़ी के बने घेरे में से वह वनमहिष बंधन-मुक्त हो गया।

जीवित यमराज सदृश वह वनमहिष कारागार की असह्य पीड़ा से क्रोधाविष्ट हो गया था। अंगारे जैसे उसके नेत्र प्रलयाग्नि की भांति लग रहे थे। उस महिष ने एक घुरकाट की। सारा वनप्रदेश प्रकंपित हो उठा।

वृक्ष पर चढ़े पारधी स्त्री-पुरुषों के हृदय धग्-धग् करने लगे। उन्होंने वृक्ष की शाखाओं को और अधिक बलपूर्वक पकड़ लिया।

सुंदत स्वस्थचित्त और निर्भय होकर उस जीवित मृत्युसम वनमहिष की ओर अग्रसर हुआ।

लगभग दस प्रहर से इस वनमहिष को कुछ भी भोजन नहीं दिया था,

इसलिए यह विकराल बना हुआ था। स्वयं बंधन-मुक्त हो गया है, यह जानकर वह महिष चारों पैरों को पृथ्वी पर पछाड़ता हुआ मैदान की ओर बढ़ा····· उससे केवल पचास कदम की दूरी पर नौजवान सुदंत खड़ा था। इतने विशाल मैदान में एकमात्र मानव को देख वह वनमहिष उसकी ओर दौड़ा।

वृक्षों पर चढ़े पारधियों के श्वास रुक-से गए और वे स्थिरदृष्टि से नीचे देखने लगे।

क्या होगा? महाकाल जैसा यह वनमहिष इस नौजवान को रौंद देगा तो·····?

वासरी के हृदय में सुदंत घर कर गया था····· वह उसे आतुर नेत्रों से देख रही थी और मन ही मन देवी का स्मरण कर रही थी।

२. विजेता

चन्द्रमा पश्चिम कोण की ओर बढ़ रहा था····· फिर भी इस मैदान में पूर्ण प्रकाश था····· और वृक्षों की छाया कुछ विस्तृत हो रही थी।

सामने से आते हुए वनमहिष की ओर दृष्टि टिकाए सुदंत पूर्ण जागरूक और सावधान था। वह सोच रहा था कि यदि वासरी जैसी रूपवती कन्या का सहवास इष्ट है तो इस जीवित मृत्यु को मार कर रास्ते से हटाना ही होगा।

पारधी सुदंत छकाकर महिष को मैदान की ओर ले आया।

पारधी परिवार धड़कते हृदय से कभी सुदंत की ओर स्थिर दृष्टि से देख रहे थे और कभी वनमहिष की भयंकरता का अनुभव कर रहे थे। सुदंत ने वनमहिष की शक्ति को क्षीण करने के लिए चक्कर लगाने प्रारंभ किए। वह गोलाकार चक्कर लगा रहा था। वनमहिष छोटे हाथी की भांति भारी-भरकम था। वह सहजतया गोलाकार घूम नहीं पा रहा था। ज्यों ही वनमहिष सुदंत की ओर आता, सुदंत दूसरी दिशा में मुड़ जाता और तब पारधियों के हाहाकार फूट पड़ते।

परिणाम क्या होगा?'····· यह कोई नहीं जान पा रहा था। और यह प्रश्न सब के मन में चुभन पैदा कर रहा था। वनमहिष की शक्ति को सभी पारधी जानते थे। उन्हें ज्ञात था कि वनमहिष के एक ही मस्तक प्रहार से बलिष्ठ मनुष्य धूल चाटने लग जाता है और महिष तब उसके शरीर का कचूमर निकाल देता है। यह स्थिति सभी पारधियों को ज्ञात थी और इसीलिए सभी संशयात्मक दृष्टि से देख रहे थे।

एक वृक्ष पर वासरी अपनी सखियों के साथ बैठी थी। सुदंत को वनमहिष के साथ देखकर उसका हृदय धड़कने लगा। उसका मन बार-बार पुकार रहा था—भगवन्! सुदंत को विजयी बनाना।

सुदंत मैदान के मध्य वनमहिष को गोलाकार चक्कर कटवा रहा था। इस

प्रवृत्ति से वनमहिष क्रोधान्ध होकर येन-केन-प्रकारेण सुदंत से भिड़ने का प्रयत्न कर रहा था। प्रयत्न की विफलता से उसकी खीज बढ़ी और तब उसने भूमि पर अपना सिर पटका और दुगुने वेग से वह सुदंत की ओर दौड़ा।

लगभग एक घटिका पर्यन्त सुदंत वनमहिष को इस प्रकार छकाता रहा। फिर उसे यह भान हुआ कि इस प्रकार अधिक चक्कर लगाना उचित नहीं है, क्योंकि उससे स्वयं भी थक कर निढ़ाल हो सकता है और तब विजय का यह अवसर हाथ से छिटक सकता है।

वनमहिष चक्कर लगाने के कारण हांफ रहा था और विश्राम करने के लिए एक स्थान पर खड़ा रह गया था। उसी समय सुदंत तेज आवाज में ललकारते हुए वनमहिष की ओर दौड़ा।

वृक्ष पर बैठकर देखने वाले पारधी नर-नारी अवाक् बन गए। वासरी के हृदय की धड़कन अत्यधिक बढ़ गई·····।

मौत और मनुष्य के बीच का यह कातिल संग्राम था। विशालकाय व महिष का एक ही मस्तक-प्रहार सुदंत के लिए प्राणघातक हो सकता था·····

परंतु·····

आंख की पलक झपकते ही सुदंत और वनमहिष-दोनों आपस में गुंथ गए। सुदंत ने अपने प्रचंड हाथों से वनमहिष के दोनों सींग पकड़ लिये।

इससे वनमहिष का रोष प्रचंड हो गया। उसकी आंखों से अंगारे बरसने लगे। उसने पूर्ण वेग से मस्तक को झटका दिया····· परन्तु सुदंत के बाहुबली हाथों से वह छूट नहीं सका। सुदंत में बाहुशक्ति ही नहीं थी, साथ-साथ यौवन की मदमस्ती भी थी और उसके हृदय में एक तीव्र अभीप्सा उछल रही थी। वनमहिष के उछल-कूद से भी सुदंत ने उसके सींग नहीं छोड़े।

और यह मल्लयुद्ध प्रत्येक दर्शक को थरथराने वाला हो गया।

कुछ क्षण बीते होंगे कि वनमहिष ने सुदंत को प्रचंड शक्ति के साथ ऊपर उछाला और यह देखते ही वासरी चीख उठी·····

सभी प्रेक्षकों का श्वास वहीं अवरुद्ध हो गया।

किन्तु सुदंत ने सींग नहीं छोड़े। उसकी पकड़ और अधिक मजबूत हो गई। वह जानता था कि यदि सींग छोड़ दूंगा तो महिष मेरा काल बन जाएगा।

सींग मुक्त कराने के असफल प्रयत्न के कारण महिष अत्यधिक विकराल हो गया और तब वीरवर सुदंत ने श्वास को रोक कर इतना दबाव दिया कि महिष का मस्तिष्क दबा·····खूब दबा····· उसे चसकने नहीं दिया। महिष ने पुनः प्रचंड वेग से सुदंत को उछाला। हाथों से सींग छूट गए।

सुदंत ऊपर उछला। नीचे आते ही सीधा महिष की पीठ पर आ जमा।

वह जानता था कि महिष का कमजोर भाग कौन-सा होता है। उसने समय

खोए बिना महिष के सींगों के बीच के स्थान पर मुष्टि प्रहार प्रारंभ किया। एक-दो-तीन। महिष तिलमिला उठा। वह अशक्त हो गया।

वनमहिष के मल-स्राव हो गया।

यह देख कर सभी प्रेक्षकों के प्राणों में आशा की एक मीठी रेखा उभर आई।

और प्रसन्न वदन से देख रही वासरी के साथल में उसकी एक सखी ने चिकोटी काटते हुए कहा—'बाप रे! बाप! देख, यदि तू सावधान नहीं रहेगी तो सुदंत तेरी भी दशा इस वनमहिष.....'

सखी अपना वाक्य पूरा नहीं कर पाई..... क्योंकि सुदंत अपने बाहुबल से महिष को धरती पर पटक चुका था..... लग रहा था मानो वनमहिष शक्तिशून्य होकर धरती पर गिर पड़ा है..... एक मानव के समक्ष वन का एक विराट् प्राणी पामर बन गया था।

सुदंत ने भी अनुभव कर लिया कि वनमहिष शक्तिहीन बन गया है। अब वह पुनः उठने की स्थिति में नहीं है।.....

और मानो कुछ भी घटित न हुआ हो ऐसी स्वस्थता के साथ सुदंत पचास कदम दूर जाकर खड़ा हो गया। उसी क्षण वनमहिष भी उठा और मैदान छोड़कर वन की ओर भाग गया। वह भागता जा रहा था और बार-बार मुड़ कर देख रहा था कि कोई मानव पीछा तो नहीं कर रहा है।

वनमहिष पराजित हो गया।

पारधियों ने सुदंत का जय-जयकार किया।

सभी वृक्ष से नीचे उतरने लगे।

सुदंत बहुत श्रमित हो चुका था..... एक जोरावर वनमहिष के साथ शक्ति-परीक्षण करना और ऐसे खूंखार जानवर को निस्तेज कर देना कोई खेल नहीं था..... मृत्यु के साथ मल्लयुद्ध था..... श्रमित सुदंत सुस्ताने के लिए एक ओर बैठ गया।

सुदंत के मित्र दौड़े-दौड़े उसके निकट आए और उसकी वीरता की प्रशंसा करने लगे।

और वहां बाल, वृद्ध, नर और नारी सुदंत को घेर कर खड़े हो गए।

मुखिया पारधी भी वृद्धों की मंडली के साथ वहां आ पहुंचा। एक ओर पड़े आठ-दस खाट बिछा दिए गए। मुखिया ने सुदंत की पीठ थपथपाते हुए कहा—'सुदंत! तुम्हारे पिता भी तुम्हारे जैसे शक्तिशाली और निर्भय थे। आओ पुत्र! आओ। इस खाट पर बैठो..... आज तुम्हारे इस अनूठे विजय पर मुझे गर्व है और अपना यह सारा पारधी परिवार गर्विष्ठ हुआ है।.....'

सुदंत खाट पर बैठ गया।

आस-पास की भूमि पर सभी नर-नारी और बालक बैठ गए।

शरद् का चांद नीचे उतर गया था। रात्रि का चौथा प्रहर चल रहा था और वह शीघ्र ही बीत जाने वाला था, ऐसा प्रतीत हो रहा था।

मुखिया खड़ा हुआ·····बोला—'भाइयो! हमारे गांव का यह बहादुर सुदंत विजेता बना है और मैं अपनी कन्या वासरी को, आप सभी की साक्षी से, इसके साथ ब्याहता हूं।'

वनपुष्पों की एक माला लेकर वासरी अपनी दो सखियों को साथ ले, लज्जा के भार से झुकी हुई, वहां आ पहुंची।

पारधी जाति में विवाह की यही विधि है कि कन्या वर को वरमाला पहनाती है और इतने में ही विवाह की रस्म पूरी हो जाती है····· फिर सभी साथ में बैठ कर भोजन कर लेते हैं।

वासरी निकट आई। इतने में ही मुखिया ने हाथ पकड़ कर कहा—'बेटी! तू भाग्यशाली है। तुझे मनचाहा पति मिला है। तू मन में भगवान और देवी का स्मरण करती हुई सुदंत को वरमाला पहना दे।'

सुदंत खाट से उठा। वासरी को देखते ही उसका सारा श्रम विलुप्त हो गया था। उसका वदन प्रातःकाल के कुसुम की भांति प्रसन्नता से खिल उठा।

तिरछी दृष्टि से सुदंत की ओर देखती हुई वासरी ने वनपुष्पों की माला सुदंत के गले में पहना दी।

चर्मवाद्य बज उठे। वाद्य और शहनाई के स्वरों ने वातावरण को गुंजित कर उसे रसमय बना डाला।

शरद् पूर्णिमा की रात बीत गई।

उषा की स्वर्णिम आभा पूर्व दिशा के गगन में दृग्गोचर होने लगी।

मुखिया सुदंत की ओर अभिमुख होकर बोला—'सुदंत! आज से मेरी पुत्री वासरी तुम्हारी घरवाली बनी है····· तुम उसको हृदय के प्यार से भिगोते रहना·····फिर कन्या की ओर अभिमुख होकर कहा—'बेटी! तू अपने पति की सुरक्षा करना, जतन से रखना और दोनों अत्यंत प्रेमपूर्वक रहना।'

पश्चात् नव दंपती ने सभी वृद्ध पुरुषों का चरण स्पर्श किया····· मुखिया के चरणों में वे दोनों लुठ गए।

पूर्व दिशा का गगन रंगीले काव्य के समान बन गया था।

स्त्रियां दोनों का नाम ले-लेकर गीत गाने लगी।

मुखिया ने सभी के सामने देखकर कहा—'आज का त्यौहार संपन्न हो चुका है। अब हम सबको साथ बैठकर भोजन करना है।'

सभी आनन्दविभोर होकर अपनी-अपनी झोंपड़ी की ओर अग्रसर हुए।

सुदंत के माता-पिता मृत्यु प्राप्त कर चुके थे····· एक बहिन थी। वह भाई

का हाथ पकड़ कर खड़ी थी। उसके हृदय में हर्ष समा नहीं रहा था।

वासरी की सखियां, सुदंत के मित्र, सुदंत की बहिन, बहनोई आदि नवदंपती के साथ सुदंत की झोंपड़ी की ओर अग्रसर हुए।

सभी के हृदय में एक ही बात क्रीड़ा कर रही थी कि ईश्वर ने समान जोड़ी मिलाई है।

ज्यों ही सुदंत की झोंपड़ी निकट आई तब बहिन दौड़कर आगे आई और झोंपड़ी के परिसर के झांपें को अलग कर रख दिया। आस-पास के आठ-दस झोंपड़ियों से स्त्री-पुरुष वहां आ पहुंचे, जो अभी-अभी अपनी झोंपड़ियों में गए थे।

एक पारधी बहिन किसी वृक्ष के पत्ते पीस कर एक काष्ठ की पात्री में ले आई थी। सुदंत और वासरी ज्यों ही झोंपड़ी के परिसर में आए तब सुदंत की बहिन झोंपड़ी में से हर्षफुल्ल वदन से बाहर आई। वनस्पति को पीसकर तैयार किए गए लाल रंग के पानी में दोनों हाथों को डूबो कर भाई और भाभी के गालों पर लेप किया और कपाल पर भी वह लेप लगा दिया।

फिर नवदंपती को लेकर बहिन झोंपड़ी में गई। इन वनवासियों के पास तेल-घी तो था ही नहीं, परंतु ये एक वृक्षविशेष का रस एकत्रित कर रखते थे। उसमें घास की वर्ती डुबोकर उसे चकमक पत्थर की अग्नि से प्रज्वलित कर दीपक जलाते थे। बहिन ने दीपक जलाया और उस दीपक के समक्ष दोनों को बिठाया।

इतने में ही मुखिया के घर से दूध से भरा एक दोना आया। उस दोने में से एक पात्र में दूध भर कर सुदंत ने वासरी को पिलाया और वासरी ने एक पात्र में दूध भरकर सुदंत को पिलाया।

पारधी जाति की यह सहज रीति थी। दीपक को नमन कर दोनों उठे और एक खाट पर बैठ गए।

सूर्य अपनी गति से आगे बढ़ रहा था।

कुछ ही समय के पश्चात् नगाड़े बजने लगे। मुखिया पारधी, उसके साथी कुछेक स्त्री-पुरुष तथा बालक एकत्रित हो गए। सभी नवदंपति को साथ ले कुछ ही दूरी पर स्थित देवी के मंदिर में पहुंचे।

वाद्यों के रणकार और स्त्रियों के उल्लासभरे गीतों की मधुरध्वनि से नवदंपति ने चार फेरे संपन्न किए····· फिर सुदंत ने अपने गले से वरमाला उतारी····· उसे दोनों ने पकड़ देवी के मंदिर में रख दी।

विधि पूरी हुई।

वहीं सभी ने सामूहिक नृत्य प्रारंभ कर दिया।

इधर मुखिया के परिसर में बड़े-बड़े चूल्हों पर विविध प्रकार के मीठे कंद

और दूध पक रहा था।

नवदंपति अब प्रत्येक झोंपड़ी पर रंगभरी हथेलियों के छापे लगाने जाने वाले थे। उनके साथ पांच स्त्रियां और पांच पुरुष साथ-साथ चल रहे थे।

यह कार्य संपन्न होने पर सभी स्त्री-पुरुष भोजन के लिए बैठे। मध्याह्नोपरांत भोजन से सभी निवृत्त हो गए और मदिरा के भांड भी खाली होने लगे।

इस प्रकार सायंकाल के समय तक लग्नोत्सव की रस्म पूरी हो गई।

अब वासरी को विदाई देनी थी। मुखिया ने वासरी को हृदय से लगा कर कहा-'बेटी! पति का ध्यान रखना। उसकी आज्ञा में रहना। भगवान को याद रखना।'

वासरी की मां ने वासरी को गले लगाकर गद्‌गद् स्वर में आशीर्वाद दिया और संस्कारों को उज्ज्वल रखने की प्रेरणा दी। फिर माता-पिता ने वृक्ष की छाल से बनी एक मंजूषा को बाहर निकाला। उसमें वासरी के लिए कुछेक वस्त्र····· शंख, सीप, कौड़ियों से बने कुछ अलंकार थे। उसमें एक चांदी का हार, कंगन और झूमके थे।

सूर्यास्त के पश्चात् धूमधाम के साथ कन्या को विदाई दी गई। मुखिया ने अपनी कन्या वासरी को दो गायें, दस भेड़ें, दस बकरियां और कुछेक हाथीदांत दिए। यह दहेज उत्तम माना जाता था।

नवदंपति अपनी झोंपड़ी में आ गए। पहुंचाने वाले वहां मदिरापान कर अपने-अपने घर लौट गए।

अब वासरी और सुदंत!

अपना घर!

नीरव रात्रि और मधुर एकान्त!

यह झोंपड़ी नहीं पल्लीवासियों का भवन था। यहां न गद्दी थी और न तकिया। फिर भी सुदंत की बहिन ने यहां वनपल्लव और कमलपत्रों की एक शय्या तैयार कर दी थी। उस पर एक वल्कल बिछा दिया गया।

वनस्पति के रस का एक दीपक मधुर प्रकाश बिखेर रहा था। सुदंत ने झोंपड़ी का द्वार ढंक दिया। उसी समय एक ओर बिछे खाट के नीचे से एक आदमी निकल कर बोला—'अरे जल्दी क्या है? मुझे बाहर तो जाने दो·····।'

'तुम कहां थे बालम?'

'खाट के नीचे सो गया था। अच्छा, अब झांपा तो खोल, मैं बाहर चला जाऊं?·····'

वासरी मानो लज्जा के बोझ से नीचे दब-सी गई थी।····· वह एक ओर जड़वत् बैठ गई। देह लज्जा से दब गया था, परन्तु मन अनेक रंगीन तरंगों को संजोए हुए उछल-कूद कर रहा था।

सुदंत ने बालम को विदा कर झोंपड़ी को झांपे से बंद कर दिया, फिर भी चारों ओर दृष्टि डाल कर देख लिया कि कोई कहीं छुपा तो नहीं है।

एक ओर खाट बिछा हुआ था और दूसरी ओर धरती पर पल्लवशय्या बिछी हुई थी।

पुरुष और प्रकृति!

नर और नारी!

पुरुष या स्त्री चाहे वनवासी हो या संस्कारी, धनवान् हो या गरीब! मनुष्य ही क्यों, प्राणीमात्र का विचार करें तो प्रतीत होता है कि सभी कामराग में मदमस्त बनने की कामना करते हैं, कामरागी हैं। अनन्त जन्मों के ये संस्कार प्रत्येक प्राणी के साथ रहते हैं। जब तक ये संस्कार नहीं छूटते तब तक जीव संसार से मुक्त नहीं हो पाता।

सुदंत ने एक ओर बैठी वासरी से तुतलाते हुए कहा–'वासरी!·····'

वासरी के हृदय में कंपन होने लगा····· किन्तु वह सुदंत की ओर देख नहीं सकी।

सुदंत धीर-धीरे पत्नी के पास गया और बाहु पकड़कर बोला–'चल, खाट पर बैठकर मदिरापान करें।'

वासरी ने हिम्मत कर सुदंत की ओर देखा····· कैसा वज्रकाय पुरुष है। वनमहिष को धराशायी करने वाले पुरुष को पतिरूप में पाकर वह धन्य हो गई। धन्य-धन्य हो गई।

सुदंत ने दोनों हाथों का सहारा देकर पत्नी को उठाया।

झोंपड़ी के बाहर मधुर चांदनी बरस रही थी।····· चांद की रश्मियां झोंपड़ी के छिद्रों से भीतर प्रवेश कर चुकी थी।····· आकाश स्वच्छ था····· न था मेघ और न थी आंधी।

परंतु नरनार का मिलन आषाढ़ की विद्युत् जैसा प्रकंपित करने वाला होता है और इसका अनुभव वे दोनों युवा हृदय कर रहे थे·····।

३. दो युवा हृदय

वासरी और सुदंत के सहजीवन का आज पांचवां दिन था।

कार्तिक कृष्णा पंचमी की रात।

समूचे वनप्रदेश पर शीतल मधुर चांदनी फैल गई थी। रात्रि का प्रथम प्रहर कभी का पूरा हो गया था। भोजन से निवृत्त होकर पारधी के परिवार अपनी-अपनी झोंपड़ियों के परिसर में बैठकर बातें कर रहे थे। किसी-किसी झोंपड़ी में युवा पारधी एकत्र होकर मदिरापान करने में मशगूल थे और अपनी-अपनी प्रियतमाओं की बातें कर रहे थे।

कुछेक झोंपड़ियों में वृद्ध पुरुष हुक्का और चिलम पी रहे थे और कुछ विविध प्रसंगों की बातें कर रहे थे। कोई अपने यौवन की यशोगाथा गा रहा था और कोई अपने साहसिक कार्य का व्याख्यान कर रहा था।

इस प्रकार सारे ग्रामवासी अपने-अपने सुख और संतोष में मस्ती मानते हुए रह रहे थे।

और गत पूर्णिमा की रात में विजयी होकर वासरी जैसी सुंदर कन्या को प्राप्त करने वाला सुदंत अपने घर से कुछ ही दूर वनप्रदेश के एक वृक्ष की शाखा पर रज्जु का झूला बांधने के लिए वृक्ष पर चढ़ रहा था।

वासरी अपनी ही झोंपड़ी में अपनी समवयस्क सखियों के साथ हास-परिहास कर रही थी। किन्तु उसका मन सुदंत की प्रतीक्षा में रत होने के कारण वह बार-बार झोंपड़ी के झांपे की ओर देख रही थी। उसके हृदय में झूला झूलने····· प्रियतम के हाथों से पेंग लेने की आकांक्षा उभर रही थी। जब चित्त चंचल होता है, तब नयन भी चंचल हो जाते हैं। वासरी के नेत्र सुदंत को देखने के लिए बार-बार द्वार पर अटक रहे थे।

मनुष्य का चित्त जब किसी कल्पना में क्रीड़ा करता है तब वह उससे अतिरिक्त किसी भी बात में रस नहीं लेता। वासरी की ऐसी अवस्था देखकर एक नव विवाहिता सखी ने व्यंग्य में कहा—'अरे वासरी! मुझे लगता है कि तेरा मन किसी पंछी की भांति उड़ानें भर रहा है।'

'वाह! कैसी बात! क्या मन कभी उड़ सकता है? उसके कहां हैं पंख पक्षी जैसे!' वासरी ने मुस्कराते हुए कहा।

'ओह वासरी! मन की पांखें! वे तो अजब पांखे हैं। वे न दृश्य होती हैं और न थकती हैं····· और जब मन उड़ने की चाह करता है तब उसे कोई रोक नहीं सकता। तू अपने मन को छिपाने का व्यर्थ प्रयत्न क्यों कर रही है? आंख मन का दर्पण है····· वह तत्काल चुगली कर देती है। विवाह के बाद मेरी भी यही दशा थी जो आज तेरी है·····बोल, आज रात को कहां जाना चाहते हो?'

वासरी शरमा गई····· एक बार तिरछी दृष्टि से सामने देखकर, फिर नीचे देखने लगी। किन्तु चांदनी के भरपूर प्रकाश में उसके आनन पर नाचने वाली मस्ती की रेखाएं अदृश्य नहीं रह सकीं····· और लज्जा की गुलाबी रेखाएं गालों पर नाचने लगीं।····· आंखों में भी रंग छा गया।

दूसरी सखी ने विनोदभरे स्वरों में कहा—'वासरी!····· कल तुम दोनों क्या उस झरने के पास गए थे ?'

'हां, परन्तु मेरी तो तनिक भी इच्छा नहीं थी।'

'ओह! तब तो वह तुमको उचक कर ले गया होगा! कदंब के वृक्ष के नीचे

कमलपत्रों की रौंदी हुई नई शय्या को मैंने अपनी आंखों से देखा है।' सखी ने कहा।

वासरी मौन हो गई। क्या कहे?

किन्तु सभी में वाचाल मानी जाती हुई सखी ने मर्मभरी वाणी में कहा–'सुदंत तो बेचारा भोला प्राणी है..... वह तुझे उचक कर क्या ले जाएगा? यह तो निर्झर के तट पर, चांदनी की चादर ओढ़ कर तरंगित होने की इच्छा वासरी में ही उत्पन्न हुई होगी। हे वासरी! सच-सच कहना, आज किस ओर जाने वाली हो?'

'मुझे कुछ भी पता नहीं है..... किन्तु.....' वासरी आगे कुछ भी नहीं बोल सकी।

सखी ने कहा–'बहुत हुशियारी मत दिखा। हमको भी ऐसा अनुभव हो चुका है..... मेरा पति भी एक महीने तक मेरे पीछे-पीछे परछाईं की भांति घूमता रहता..... प्रतिदिन कुछ न कुछ ले आता..... और मैं यदि उसके भोलेपन की बात कहूं तो तू चक्कर खाकर नीचे गिर पड़ेगी।'

इतने समय तक मौनभाव से बैठी राजी नाम की युवती बोल पड़ी–'सखि! तुझे विवाहित हुए एक वर्ष बीत चुका है, फिर भी तेरा पति तेरा पीछा कहां छोड़ रहा है। मुझे प्रतीत होता है, अभी वह मदिरापान कर तेरी ही प्रतीक्षा कर रहा होगा।' फिर वासरी की ओर उन्मुख होकर बोली–'वास! तू हाथीदांत के विषय में कहती थी, क्या हाथीदांत आ गए?'

'नहीं, चार-छह दिन बाद लेने जाएंगे.....' वासरी ने संकोचभाव से कहा।

लखी ने तत्काल प्रश्न किया–'हाथीदांत! मुखिया चाचा ने तो तुझे हाथीदांत दिए ही थे।'

'तुझे हंसली किसकी मिली थी?' राजी ने लखी के सामने देखते हुए कहा।

लखी तत्काल शरमा गई और अन्य सभी सखियां हंस पड़ीं।

मालू ने वासरी का हाथ पकड़ कर कहा–'अरे! मांग कर भी तूने हाथीदांत ही मांगा?'

वासरी कुछ कहे, उससे पूर्व ही झोंपडी का झांपा उघड़ा..... वासरी की दृष्टि उस ओर गई..... सभी सखियों की दृष्टि झांपा की ओर उठी..... प्रचंड, सुदृढ़ और सशक्त दीखने वाला सुदंत अंदर प्रविष्ट हुआ।

लखी ने सुदंत से कहा–'भाई! तुम ठीक अवसर पर आये! हम तो वासरी से पूछते-पूछते थक गई।..... यह कुछ बोलती ही नहीं कि आज की रात कहां बिताने का निश्चय किया है!..... हम कोई साथ थोड़े ही आ जातीं.....'

राजी ने तत्काल लखी के चिकोटी काटते हुए कहा–'तेरा पति तुझे उचककर ले जाना चाहे तो तू जा।'

सभी हंस पड़ी·····।

सुदंत आगे आया। लखी ने पुनः प्रश्न किया।

सुदंत अन्यान्य पारधी युवकों से अत्यधिक शरमालु प्रकृति का था। उसको स्त्रियों के साथ बातचीत करना, परिहास करना—आदि का शौक नहीं था। वह एक ओर खड़ा रहकर बोला—'लखी बहिन! तुम मानो तो मैं सच-सच बताऊं।'

सभी सखियां सुदंत की ओर देखने लगीं।

सुदंत बोला—'आज हम कहां जाने वाले हैं। इसकी खबर न मुझे है और न इसको।'

राजी तत्काल बोल पड़ी—'वाह रे सुदंत वाह! पांच ही दिनों में तू इतना हुशियार हो जाएगा, ऐसा तो हमने नहीं माना था।····· दोनों नहीं जानते, तो फिर कौन जानता है?'

सुदंत ने हंसते हुए कहा—'जानती है यह चांदनी रात और वनप्रदेश में बंधा हुआ झूला।'

लखी वासरी की साथल पर चिकोटी काटते हुए बोली—'अभी कलयुग आने में समय शेष है। तुझे सारा ज्ञात है, फिर भी तू इतनी भोली बन रही है कि मानो कुछ भी नहीं जानती।'

'अरे! वासरी! तू भी तो इतनी गहरी बन गई·····? क्या सखियां पराई हैं?'

वासरी ने राजी का हाथ पकड़ कर मधुर स्वरों में कहा—'राजी! क्या करूं? इसने मुझे कहने की मनाही की थी, अन्यथा मैं सखियों से कोई बात छुपाती ?'

'अच्छा, बहिन! जितना छुपाना हो उतना छुपाती रहना····· किन्तु तेरी आंखें कुछ भी छुपा नहीं पाएंगीं····· बेचारी आंखें!·····' राजी ने कहा।

लखी ने एक नया प्रश्न फेंका—'हे वासरी! झूला एक बांधा है या दो?'

वासरी ने तत्काल प्रतिप्रश्न किया—'वनवीर ने कितने झूले बंधाए थे?'

'परन्तु हम तेरी तरह आधी रात में भयंकर वन में नहीं जाते थे।' लखी बोली।

'इसको वन बहुत प्रिय है·····'

'और तुझे क्या प्रिय है?' राजी ने पूछा।

वासरी कुछ कहे, उससे पहले ही सुदंत झोंपड़ी से बाहर जाकर खड़ा रह गया।

सभी सखियों ने सुदंत की ओर देखा। उसके कंधों पर बाणों का तूणीर था।····· एक हाथ में धनुष था और दूसरे हाथ में छोटा-सा कटोरदान जैसा बरतन था।

सभी सखियां उठ खड़ी हुई।

वासरी बोली–'अरे! इतनी उतावल क्या है? बैठो तो?'

लखी तत्काल बोली–'अरे! हम तो पूरी रात यहां बैठने के लिए तैयार हैं····· किन्तु इधर देख, तेरा बालम कितना उतावला हो रहा है।'

सभी सखियां अपने-अपने झोंपड़ों की ओर विदा हुई, वासरी उन सबको झांपा तक पहुंचा कर लौट आई।

चांदनी के मीठे प्रकाश में वासरी और अधिक सुंदर दीख रही थी। सुदंत बोला–'अरे चल, अन्यथा बहुत विलम्ब हो जाएगा।'

'तुम बहुत अधीर हो। मेरी सखियां मुझे पींज डालेगीं' वासरी ने सुदंत के निकट आते हुए कहा।

'यह तो सबके साथ घटित होती है। लखी को क्या कम दबोचा था उसके पति ने! अब चल, शीघ्रता कर।' तू 'कांटरखां' (विशेष वस्त्र) पहन ले।

'धनुष-बाण साथ में क्यों लिया है ?' वासरी ने पूछा।

'हम आज जहां जाना चाहते हैं, वहां एक बाघ आया हुआ है····· साधन हो तो उसका उपयोग हो सकता है।·····'

वासरी झोंपड़ी में गई····· कुछ ही क्षणों पश्चात् 'कांटरखां' पहन कर बाहर आई और मधुर स्वर में बोली–'कुछ ठहर कर चलें तो?'

'क्यों बाघ से डर गई?'

'तुम साथ में हो फिर मुझे किसका भय? किन्तु बाहर के चौक में अनेक पुरुष बैठे हों तो?·····'

'तो क्या? सभी को अपने-अपने बीते दिन याद आ जाएंगे·····किन्तु हमें कोई देख नहीं पाएगा। सभी मदिरा में मदमस्त हैं····· और हम दूसरी राह से जाएंगे।'

'क्या तुमने मदिरापान कर लिया?'

'तू ही मेरी मदिरा है·····।' कहकर सुदंत ने वासरी का हाथ पकड़ लिया।

चांदनी रात की उस अमृत वेला में दोनों युवा हृदय झांपे को खोल कर बाहर आए। छोटी पगडंडी पर एक-दूसरे का हाथ थामे दोनों चल रहे थे। अचानक वासरी चौंकी और सुदंत से चिपट गई। सुदंत बोला–'क्यों, क्या हुआ?'

'सामने देखो तो सही·····।'

सुदंत ने सामने देखा। एक भयंकर विषधर फन को ऊंचा उठाए पगडंडी के बीच बैठा हुआ फुफकार रहा था। वह केवल दस कदम दूर था।

पारधी नाग को नहीं मारते। वे नाग को देव मानते हैं। इसलिए सुदंत वासरी को अपने पीछे रखकर सावाधानी पूर्वक पगडंडी को पार कर लिया। और जब वे

वनखंड के स्थान पर पहुंचे तो तब चांदनी अत्यधिक मधुर हो चुकी थी।

एक विशाल वृक्ष की मजबूत शाखा पर लटकता हुआ एक झूला स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

'कितना सुंदर स्थान मैंने पसंद किया है?' सुदंत ने वासरी की ओर देखकर कहा।

'बाघ भी आ जाए तो पता न लगे, ऐसा स्थान!'

'बाघ से मुझे तनिक भी भय नहीं है·····मुझे तो भय है·····।'

'क्यों, किसका भय?'

'मेरी इस बाघिन का·····।'

सुंदर वनराजि····· मधुर और स्निग्ध चांदनी····· मध्यरात्रि की मीठी नीरवता!

दो युवा हृदय एक-दूसरे की धड़कन में एकाकार हो गए थे।

सुदंत बोला–'वासरी! पहले झूले पर बैठना है अथवा इस कटोरदान को खोलना है ?'

'झूले पर'·····वासरी ने कहा।

दोनों झूले के पास गए। सुदंत बोला–'तू बैठ, मैं झूला झुलाऊंगा।'

'नहीं, तुम बैठो····· मैं झुलाऊंगी' वासरी ने कहा।

धनुष-बाण और कटोरदान को भूमि पर रख सुदंत झूले पर बैठ गया।

वासरी ने झुलाना प्रारंभ किया। इतने में ही सुदंत ने वासरी को पकड़ कर अपने अंक में बिठा दिया। दोनों झूलने लगे।

वासरी बोली–'मुझे झुलाने दो।'

परन्तु प्रियतम की पकड़ से प्रियतमा छिटक नहीं सकी। झूला आकाश को छूने लगा।

चन्द्रकिरणों की रूपहरी जाली कोई अनोखा रूप दिखा रही थी। और पल्लवों के बीच से झांकता हुआ चांद देख रहा था कि दो युवा हृदय रसविभोर हो रहे हैं। एक-दूसरे का अस्तित्व एक-दूसरे में समा रहा था।

कोई भी 'योग' लगन और मस्ती के बिना फलित नहीं होता····· फिर वह चाहे कामयोग हो या निष्कामयोग।

यौवन का क्षणभंगुर आनन्द भी उसी समय प्राप्त होता है जब परस्पर तल्लीन होने का भाव हृदय में जागृत होता है।

तो फिर आत्मकल्याण के अनन्त आनन्द का अनुभव करने के लिए प्रगाढ़ तल्लीनता हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या है?

अर्ध घटिका के बाद सुदंत झूले से नीचे उतरा और वासरी को झूले पर बिठा, झूला झूलाने लगा। वासरी पवनकुमारी की भांति आकाश में झूलने लगी।

इतने में ही·····।

वासरी की दृष्टि सामने की सघन झाड़ी की ओर गई और वह चौंक कर बोली····· बाघ·····बाघ····· सामने देखो····· सामने के झुरमुट से आ रहा है·····।

सुदंत ने देखा·····मात्र दो सौ कदम दूर····· एक विकराल बाघ छुपते-छुपते आ रहा है·····।

भय मनुष्य की सारी मस्ती को लील लेता है।

सुदंत ने शीघ्रता से धनुष-बाण उठाया और बाघ की ओर निशाना बांधा।

विकराल बाघ ने एक भयंकर गर्जना की····· उसकी दहाड़ से समूचा वनखंड प्रकंपित हो गया।

झूले पर बैठी वासरी भयभीत नेत्रों से बाघ की ओर देखती-देखती झूले पर खड़ी हो गई और झूले की डोर पर पैर रखकर देखने लगी। झूले की गति मंद हो चुकी थी।

और यमराज सदृश बाघ अब केवल पचास कदम दूर था। नौजवान पारधी सुदंत ने एक क्षण का भी विलंब किए बिना बाण छोड़ा।

पहला बाण बाघ के सिर में घुस गया। वन का यह विकराल पशु क्रोधातुर हो गया और उसने जोर से दहाड़ा। इतने में ही सुदंत का दूसरा तीर उसके देह में घुस गया था।

प्रचंड शक्ति से फेंके गए बाण से घायल बाघ पांच कदम पीछे हट गया।

और तब सुदंत द्वारा छोड़ा गया तीसरा बाण उसके वक्षस्थल को भेद कर जमीन पर आ गिरा।

बाघ नीचे गिर कर तड़फड़ाने लगा।

झूला थम गया था।

सुदंत ने अपने भाल पर आए पसीने को पोंछते-पोंछते वासरी की ओर देखा।

वासरी भी अपने अचूक निशानेबाज पति को देख रही थी।

सुदंत वासरी को झूले से नीचे उतारते हुए बोला–'वासरी! इस बाघ के चर्म से मैं तुम्हारे लिए कंचुकी बनाऊंगा।'

वासरी ने सुदंत के वक्षस्थल पर सिर रखकर कहा–'चलो, अब हम झोंपड़ी में चलें।'

'क्यों, अभी तो मेरे लिए झूलना बाकी है' सुदंत ने हंसते हुए कहा।

'नहीं,····· अब घर चलें।····· कहकर वासरी ने कटोरदान ले लिया।'

सुदंत बोला–'अब किसी प्रकार का भय नहीं रहा····· क्या वन-भोजन नहीं करना है?'

'झोंपड़ी भी तो वन में ही है न?' चलें।

सुदंत ने पत्नी की बात को मान लिया।

दोनों वहां से अपनी झोंपड़ी की ओर चल पड़े।

४. चकवा : चकवी

यौवन का उभार हो, शरीर स्वस्थ और बलिष्ठ हो, चिंताशून्य जीवन हो, वनराजी के मध्य निवास हो, उमंगभरे दो हृदय हों और सहजीवन का प्रारंभकाल हो! ऐसा सुयोग मिलने पर कौन मनुष्य स्वर्ग-सुखों की कामना करेगा?

सुदंत और वासरी के सहजीवन के पन्द्रह दिन पूरे हो चुके थे। आज सोलहवां दिन था।

सहजीवन की प्रथम रात्रि में वासरी ने हाथी के दो दंतशूल मांगे थे और सुदंत ने उन्हें लाने का वचन दिया था। आज वह वन में किसी विशाल हाथी के शिकार के लिए तत्पर हुआ, तब वासरी बोली—'अभी मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगी।'

सुदंत रुक गया। दो दिन बीत गए। तीसरे दिन सुदंत बोला—'वासरी! आज मेरे लिए भाता बनाकर रखना·····'

'क्यों, किसी ओर जाना है?' वासरी ने आश्चर्यभरे स्वरों में कहा।

'हाथी के शिकार के लिए·····'

'क्यों?'

'इतने समय में ही भूल गई? तेरे लिए दन्तशूल लाने हैं।'

'इतनी उतावल क्या है? और मैं इस झोंपड़ी में अकेली कैसे रह पाऊंगी?'

'किन्तु मैंने जो तुझे वचन दिया है, उसका पालन तो मुझे करना ही है।'

'दो-चार महीनों के बाद·····' वासरी ने समय को लंबा किया।

सुदंत बोला—'नहीं वासरी! जो काम करना है उसे करने में ही लाभ है। कार्तिक मास प्रारंभ हो चुका है····· इस ऋतु में हाथी को सहजता से पकड़ा जा सकता है, उसका शिकार किया जा सकता है।'

'तो फिर मुझे भी साथ ले जाओ।'

'पगली! क्या पुरुष कभी स्त्री को साथ लेकर शिकार के लिए जाता है? और यह भी हाथी का शिकार! इसके लिए वन में दूर-दूर तक भी जाना पड़ता है····· एक बात····· तू मेरे साथ रहे तो मेरा मन तेरे में ही पिरोया रहेगा, जो काम करना है वह नहीं होगा। दूसरी बात····· ऐसे जोखिमभरा काम तेरे लिए व्यर्थ है·····'

वासरी ने सुदंत को नहीं जाने दिया।

किन्तु कार्तिक पूर्णिमा के दिन सुदंत ने वासरी को ज्यों-त्यों समझा कर

अपना धनुष-बाण, तूणीर और छुरिका लेकर घर से निकल पड़ा..... मैं कल लौट आऊंगा वासुरी! तुम धैर्य रखना।.....

वासरी अपने पति को जाते हुए देखती रही..... उसके नयन सजल हो गए थे।

नवविवाहित के हृदय को एक दिवस का पति-वियोग भी असह्य होता है। चाहे स्त्री हो या पुरुष। जब वे परस्पर विलग होते हैं तब मोह रूपी प्रेम मिलने की आकांक्षा से नि:श्वास डालता रहता है।

वनप्रदेश अंगदेश का एक भाग ही था। अंगदेश का स्पर्श करती हुई गंगा नदी हिलोरें मारती हुई बहती रहती है।

सुदंत हाथी के शिकार के लिए प्रात:काल प्रस्थित हो गया था। पांच कोस की दूरी पर गंगा के किनारे वह आ पहुंचा। गंगा के किनारे एक वृक्ष के नीचे वह बैठ गया और हाथ-मुंह धोकर भोजन करने बैठा।

भोजन करते-करते उसे वासरी की स्मृति हो आई..... या तो वह झोंपड़ी में अकेली बैठी होगी अथवा अपने पिता के घर चली गई होगी। बार-बार वह मेरी स्मृति करती होगी।

ऐसे विचारों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है..... केवल एक महीने का सहवास..... मिलाप अच्छा..... स्वभाव अच्छा।

सुदंत जलपान कर विश्राम करने की सोच रहा था। उसे याद आया..... अरे, यहां से आधे कोस की दूरी पर गंगा से लगा एक सुंदर तालाब है..... उस तालाब में अनेक बार मध्याह्न समय में जलक्रीड़ा करने के लिए हाथी आते हैं। तालाब के आसपास एक छोटा उपवन भी है, जहां विभिन्न प्रकार के पक्षी चहचहाट करते रहते हैं..... मैं वहीं जाऊं..... यह सोचकर वह वहां से उठा और अपने शस्त्र लेकर तालाब की ओर चल पड़ा।

छोटा किन्तु सुंदर सरोवर..... रमणीय उपवन और विविध प्रकार के हंस, सारस, चक्रवाक आदि पक्षियों का समूह।

जनशून्य यह सरोवर वन की शोभा के समान था। मध्याह्न काल का समय। कुछेक पक्षी उपवन में कल्लोल कर रहे थे। उनमें एक चक्रवाक का युगल अद्‌भुत दीख रहा था। यह युगल सरोवर के किनारे क्रीडारत था। नर सुंदर था तो मादा चकवी भी सुंदर थी। दोनों अपनी चोंच के माध्यम से एक-दूसरे को चूम रहे थे। चकवी अपने प्रियतम की रेशमी रोओं वाली काया को बार-बार पंपोल रही थी..... इसी प्रकार चकवा अपनी प्रियतमा की सुंदर काया का स्पर्श कर आनन्दित हो रहा था। वे परस्पर बातें भी करते थे..... किन्तु पक्षियों की भाषा को मनुष्य समझ नहीं सकता..... इसी प्रकार मनुष्य की भाषा को पशु-पक्षी भी नहीं जानते, किन्तु सभी की भावना ज्ञात होती ही है। सुख-दु:ख का अनुभव जैसे

मनुष्य करता है वैसे ही पशु-पक्षी भी करते हैं। मात्र भाषा द्वारा होने वाली अभिव्यक्ति अन्य जाति को ज्ञात नहीं होती, परन्तु भावना से तो सब कुछ जान लिया जाता है।

मोह का अंजन प्राणीमात्र के नयनों में आंजा हुआ रहता ही है। आसक्ति, अनुराग, मिलन की आकांक्षा, सुखाभास, विरह-व्यथा–ये सभी को होते हैं..... ज्ञानी पुरुष इसी को संसार कहते हैं..... संसार और कुछ नहीं..... वह है जीवमात्र का विशाल कारागृह..... उसका न आर है और न पार..... उसका न आदि है और न अन्त। आसक्ति के गुलाबी रंग से शोभित इस संसार के बंधनों को तोड़ पाना सहज-सरल नहीं होता.....

चक्रवाक युगल!

दोनों एक-दूसरे में समा गए थे।

उसी समय एक विशालकाय गजराज सरोवर के किनारे आया और मस्ती से सरोवर में उतरा।

स्नानगृह में स्त्री जैसे सब कुछ भूल जाती है, वैसे ही हाथी भी जलक्रीड़ा में मस्त हो जाता है। गजराज सरोवर में धीरे-धीरे चलने लगा और अपनी सूंड से जल को फव्वारे की तरह चारों ओर फेंकने लगा और उसी समय सरोवर तरंगित हो उठा। इतनी देर जो सरोवर शांत था, वह अब कल्लोलित हो गया। तरंगें उछलने लगीं।

चक्रवाक युगल शांतचित्त वहीं क्रीड़ा कर रहा था। आसक्ति के बंधन में बंधा प्राणी अपने सिवाय अन्य किसी की कल्पना नहीं कर पाता।

इसी समय शिकार की खोज में सुदंत पारधी वहां आ पहुंचा। विशालकाय गजराज को देखकर उसका हृदय हर्ष से बांसों उछलने लगा। हाथी के दंतशूल विशाल थे। वह जैसे चाहता था, वैसे ही सुंदर, स्वच्छ और श्रेष्ठ थे।

सुदंत ने व्याघ्रचर्म धारण कर रखा थ। उसकी काया तो मजबूत थी ही..... उसकी भुजाएं वज्र के समान थीं। उसने धनुष हाथ में लिया..... एक बाण निकाला..... इतने में ही उसे ख्याल आया कि जब तक हाथी जल में क्रीड़ा करता है तब तक उसे मारा नहीं जा सकता..... वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गया और हाथी के बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगा।

चक्रवाक युगल वहीं घूम-फिर रहा था।

गजराज सरोवर को छोड़ बाहर निकला।

गजराज को तट पर आया देखकर चक्रवाक युगल ने उड़ना प्रारंभ किया..... और सुदंत ने बाण छोड़ा.....

ओह! वह बाण हाथी को नहीं लगा, किन्तु हाथी की सीध में उड़ने वाले चक्रवाक को लगा..... उसकी पांख टूट गई..... हाथी चौंककर भाग गया.....

अपने पति चक्रवाक को धरती पर गिरते देखकर चक्रवाकी, जो कुछ ऊपर उड़ रही थी, वह तत्काल तीर की भांति नीचे उतरी····· पति की पांख टूटे हुए कमलपत्र की भांति टूट कर धरती पर पड़ी थी····· सुदंत का बाण चक्रवाक के शरीर में रह गया था····· रक्त बह रहा था····· रक्त से सना चक्रवाक का शरीर रक्त अशोक पुष्प की भांति लग रहा था····· अपने प्रियतम की, प्राणाधार की यह दशा देखकर चक्रवाकी असह्य मनोव्यथा के कारण वहीं मूर्च्छित होकर गिर पड़ी·····।

और सुदंत?

वह जड़वत् खड़ा था। कभी उसका निशाना चूका नहीं····· आज ऐसा कैसे हो गया? एक निर्दोष पंछी का वध कैसे हो गया? उसे यह भी भान नहीं रहा कि गजराज भाग कर वनप्रदेश में चला गया है। वह स्थिर दृष्टि से चक्रवाक को ही देख रहा था। जैसे ही चक्रवाकी मूर्च्छित हुई तत्काल सुदंत के हृदय पर व्रजाघात-सा हुआ और वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर बूतवत् खड़ा रह गया।

ओह! अब क्या करूं? हाथी को बींधने के लिए छोड़ा गया बाण एक निरपराधी पक्षी को लगा····· वह बच पाना असंभव है····· अरे, एक दंपती के स्नेहमय जीवन का मेरे द्वारा अन्त हुआ····· अब क्या करूं? सुदंत के मन में ऐसे विचार उमड़ रहे थे। अभी भी उसकी दृष्टि चक्रवाक की ओर ही थी। मूर्च्छित चक्रवाकी सचेत हुई और अपने प्रियतम की काया पर लुठने लगी····· उसने अपनी चोंच से प्रियतम के शरीर से बाण खींचने का प्रयत्न किया····· परन्तु वह बाण कैसे निकले? चक्रवाकी ने अपनी चोंच प्रियतम के चोंच में डाली, मानो वह उसे जागृत करने का प्रयत्न कर रही हो। सुदंत ने मन ही मन कहा····· अरे रे! यह तो काया की चिरनिद्रा है····· जब काया का हंस उड़ जाता है तब काया का एक रोआं भी प्रकंपित नहीं होता।

चक्रवाकी अपनी चोंच में थोड़ा-सा पानी ले आई और चक्रवाक की निश्चेष्ट काया पर बूंद-बूंद कर डालने लगी····· परन्तु जड़ काया····· कोई स्पंदन नहीं····· यह सत्य बेचारी चक्रवाकी कहां से समझे!

और चक्रवाकी अपनी निष्फलता को देख करुण क्रन्दन करने लगी और प्रियतम की काया पर सिर पटकने लगी।

सुदंत का शरीर कांप उठा, मन व्यथित हो गया। वह एक अपराधी की भांति पैरों से करुण क्रन्दन करनेवाली चक्रवाकी की ओर चला।

सुदंत ने देखा, चक्रवाकी अपनी पांखों से प्रियतम के शरीर पर हवा डाल रही है····· ओह! पक्षिणी! ओह! पक्षिणी! तेरा साथी तो कभी का उड़ चला है····· अनन्त वेग से वह उड़ गया है। किन्तु एक तिर्यंच इस सत्य को कैसे जाने? अरे! मनुष्य भी अपने प्रिय के विरह पर सिर पटक-पटक कर मर जाता है

तो फिर तिर्यंच का तो कहना ही क्या?

सुदंत के नयन सजल हो गए। वह निकट आया तब भयभीत होकर चकवी क्रीं..... क्रीं.....क्रीं करती हुई ऊपर उड़ कर चक्कर लगाने लगी।

सुदंत ने चक्रवाक के शरीर से बाण खींच लिया..... उस पर जल छिड़का..... परन्तु प्राण तो कभी के उड़ चले थे। सुदंत विक्षिप्त-सा हो गया। उसे न हाथी, न दंतशूल, न वासरी और न वनप्रदेश की स्मृति थी..... उसका हृदय पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा था। उसने सोचा, मैंने अक्षम्य अपराध किया है। इसका बदला मैं चक्रवाकी को किसी भी उपाय से दे नहीं सकता।..... मैं इसको आश्वासन भी नहीं दे सकता..... न मैं इसकी भाषा जानता हूं और न यह मेरी भाषा जानती है..... तो अब क्या करना चाहिए? ओह..... मुझे इस पक्षी का अग्नि संस्कार तो कर ही देना चाहिए..... इतनी सहानुभूति से भी मेरा अपराध हल्का नहीं होगा, परन्तु मैं कहूं भी तो क्या?

ऐसा सोच वह उठा।

चक्रवाकी ऊपर चक्कर लगा रही थी..... अपने स्वामी से एक पल के लिए भी अलग न रहने वाली चक्रवाकी अत्यंत व्यथित दीख रही थी।

सुदंत ने कुछ लकड़ियां एकत्रित की। पारधी को आते देख चक्रवाकी प्रियतम की काया से अलग होकर उड़ने लगी। सुदंत ने लकड़ियां नीचे रखीं और चक्रवाकी की ओर देखकर कहा—बहिन! मेरे हाथों बड़ा अन्याय हुआ है.....मैंने कभी अपना निशाना नहीं चूका..... आज ही मेरे गर्व का खंडन हुआ है..... साथ ही साथ मेरे इन निर्दयी हाथों ने तेरे साथी को मार डाला है..... बहिन! मैं क्षमा मांगने योग्य भी नहीं रहा..... तू घबरा मत..... शांत हो जा..... तेरे प्रियतम की काया वनपशुओं द्वारा कुचली न जाए इसलिए मैं इसका अग्नि संस्कार कर देता हूं..... तू शांत हो जा, बहिन! तू शांत रह..... इतना कहकर सुदंत ने छोटी-सी चिता बनाई..... चक्रवाक की काया को शुद्ध कर चिता पर रखी और उसके ऊपर छोटी-छोटी लकड़ियां चिन दी।

चक्रवाकी यह सब देखकर अत्यंत करुण कलरव करने लगी। वह बार-बार नीचे आती और पुनः उड़ जाती। लग रहा था कि वह सब कुछ भूल कर पगला गई हो।

प्रिय का विरह अत्यंत दुःखदायी होता है।

सुदंत ने चकमक पत्थर से अग्नि पैदा कर चिता सुलगाई। चिता धीरे-धीरे प्रज्वलित हुई..... वह सुलग उठी।

सुदंत अन्यमनस्क होकर एक वृक्ष के नीचे उदास होकर बैठ गया।

चारों ओर से चिता जल उठी..... अरे! चक्रवाकी अभी तक चक्कर लगा रही है? सुदंत ने चक्रवाकी की ओर देखकर कहा—'अब तू अपने निवास की ओर

चली जा····· अपने बच्चों को प्यार करना और इस दुःखद घटना को भूल जाना।'

चक्रवाकी क्या समझे और क्या सुने? वह बार-बार पारधी की ओर देख रही थी। वह अपनी भाषा में क्रन्दन करती हुई बोल रही थी····· मेरा सहवास बीच में ही टूट गया····· ओह! मेरी पांख टूट गई····· मैं एक पलभर के लिए भी प्रियतम का वियोग सहन नहीं कर सकती····· हम एक-दूसरे की आंखों में बस कर विश्व को भुला देते थे····· तेरा प्रेम मेरे लिए अमृत बना हुआ था····· मेरा प्रेम तेरे लिए····· अमृत था····· अमृत पीने वाले प्राणी पानी पीकर कैसे जीवित रह सकते हैं? प्यारे चक्रवाक! प्यारे स्नेही! तेरा वियोग असह्य है····· मैं तुझे कैसे मिल सकूंगी? नहीं····· नही····· नहीं····· मेरी और तेरी आत्मा एक है····· मात्र शरीर पृथक्-पृथक् हैं····· तू चला जाए और मैं जीवित रहूं····· यह नहीं हो सकता·····।

सुदंत चक्रवाकी की ओर सजल नेत्रों से देख रहा था।

चिता जल रही थी।

और·····।

चक्रवाकी मानो कोई महागीत गाती हुई चिता में कूद पड़ी।

सुदंत उठा। उसके नयन आंसुओं की अजस्र धारा में विलीन हो गए थे।····· शरीर कांप उठा····· वह करुण स्वरों में बोला—'ओह! मेरी बहिन! ओ! बहिन! यह तूने क्या किया ? मेरे पाप का प्रायश्चित्त तूने क्यों किया? रे! मैंने अपनी कुल-मर्यादा का लोप कर महान् पाप कर डाला····· एक आशा से ओतप्रोत बीज का मेरे कारण नाश हो गया·····मैं इस पाप-भार को कैसे सहन कर पाऊंगा?'

सुदंत आया था अपनी प्रियतमा वासरी को दिए गए वचन का पालन करने के लिए, हाथी का शिकार कर दंतशूल लेने के लिए····· पारधी का व्यवसाय ही शिकार है····· अनेक जीवों का वध कर ये लोग जीवित रहते हैं।

सुदंत चिता के निकट गया····· चक्रवाकी शांत हो चुकी थी····· उसकी काया भड़-भड़ कर जल रही थी····· परन्तु उसने कोई क्रन्दन नहीं किया····· उसकी कोमल काया भस्मसात् हो गई।

सुदंत के नयनों से अश्रुधारा सतत प्रवहमान थी। उसके प्राण छटपटा रहे थे····· उसने मन ही मन सोचा, अब जीने में कोई सार नहीं है····· जिसके हाथ में दूसरों को दुःखी करने के व्यवसाय के अतिरिक्त कोई व्यवसाय न हो, उसका जीना भी क्या जीना? मेरे द्वारा आचरित इस घोर पाप का बोझ ढोता हुआ मैं कब-कैसे सुखी रह पाऊंगा। चिता की ओर देखकर वह बोला—'बहिन! ओ बहिन! सुन ले। तू बहुत दूर मत चली जाना····· मैं अभी तेरे साथ ही आ रहा

हूं..... यह कहकर वह शीघ्रता से वन में गया और लकड़ियों का भारा लेकर वहां आ पहुंचा। दूसरी बार गया और एक भारा और ले आया। सभी लकड़ियों को उस जलती हुई चिता पर व्यवस्थित किया।'

चिता प्रज्वलित हो उठी।

सुदंत ने अपना धनुष, तूणीर, छुरिका, चकमक पत्थर आदि एक ओर रख दिए और जब चिता की ज्वाला आकाश को छूने लगी तब वह अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के मनोभाव से प्रज्वलित चिता में कूद पड़ा।

न वह चीखा और न कोई व्यथा जतलाई।

अभी सूर्यास्त नहीं हुआ था।

ढलते सूर्य का प्रकाश पूरे विश्व को भिगो रहा था और उपवन में पक्षियों के कलरव ने सारे वन-प्रदेश को गुंजित कर डाला।

दो-दो रातें बीत गईं। सुदंत नहीं लौटा। वासरी के पिता तथा अन्य पारधी गहरी चिन्ता में डूब गए। सोचा—वन-शिकार का काम है। कहीं कोई वन्यपशु के साथ संघर्ष हुआ हो और सुदंत घायल हो गया हो..... नहीं..... नहीं..... नहीं.....। सुदंत को खोजने निकलना चाहिए।

मुखिया की आज्ञा से चार टोलियां सुदंत की खोज में निकल पड़ीं। इनमें से एक टोली को सुदंत के पदचिह्न मिल गए और वह टोली उन पदचिह्नों का अनुसरण करती हुई वनप्रदेश में आगे बढ़ी।

वासरी की मनोव्यथा का अन्त नहीं था। वह अनन्त थी। मनमाने पति का सुयोग मिले अभी कुछ ही समय बीता था। मैंने उन्हें रोका, किन्तु वे वचन निभाने, मेरे लिए दंतशूल लाने चल पड़े..... कितने प्रेमी थे मेरे कान्त! हंसमुख चेहरा, शौर्य झलकाती आंखें, वज्र के समान छाती और काया में धड़कती अपार शक्ति..... अरे! मेरे पति का क्या हुआ होगा? उनका निशाना अचूक था..... किसी पशु के पंजों में फंसने वाले वे नहीं थे..... लगता है हाथी की टोह में कहीं दूर निकल गए हों!..... जंगल में कहीं मार्ग भूलकर भटक गए हों..... पूरे वन-प्रदेश को वे अपने पैरों से रौंद चुके हैं, फिर भटकाव कैसा ?..... तो फिर वे आए क्यों नहीं ? दूसरे दिन आने का वादा कर गए थे..... आए क्यों नहीं.....।

दो दिन और बीत गए।

वासरी अपने पिता के घर पर ही थी। उसकी सखियां उसे धैर्य बंधाती..... आश्वस्त करने का प्रयत्न करतीं..... किन्तु अब धैर्य रखना उसके लिए कठिन हो गया था।

दो टोलियां निराश होकर आ पहुंची थीं।

तीसरी टोली मध्याह्न के समय आकर मुखिया से बोली—'मुखिया दादा! पहले इस सामान की पहचान कर लो।'

सामान देखते ही मुखिया बोल उठा–'अरे! यह धनुष तो सुदंत का ही है..... यह पात्र भी उसी का है..... यह सब सामान कहां से मिला?'

टोली के नायक ने कहा–'सुदंत के पदचिह्नों का अनुसरण करते-करते हम गंगा के किनारे उस सरोवर तक पहुंच गए। वहां ये सारी वस्तुएं पड़ी थीं और कुछ ही दूरी पर एक चिता ठंडी पड़ी हुई देखी..... हमने उस चिता को टंटोला..... केवल हड्डियों के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला..... किन्तु उस ठंडी चिता में हमें एक वस्तु प्राप्त हुई, कहकर नायक ने एक लोहे का ताबीज निकाला। उसकी डोरी जल गई थी.....परन्तु ताबीज अखंड था। इस ताबीज को देखते ही मुखिया बोल पड़ा–'यह ताबीज तो सुदंत का ही है..... क्या यह चिता में प्राप्त हुआ था?'

'हां दादा!'

'सुदंत के पदचिह्न आगे तो नहीं दीखे?'

'नहीं..... हमने बहुत खोज की..... और नई बात तो यह है कि इतनी दूरी में और किसी के पदचिह्न हमने नहीं देखे..... हां, एक हाथी के पदचिह्न अवश्य थे।'

वृद्ध मंडली के सदस्यों ने विचारणा प्रारंभ की। दीर्घ चिन्तन के पश्चात् यह निर्णय हुआ कि किसी घोर कापालिक ने सुदंत का भोग लिया है और उसे जीवित जला डाला है।

और पूरी पल्ली शोकाकुल होकर चिल्लाने-चीखने लगी।

वासरी का रुदन अत्यंत करुण और वनप्रदेश को प्रकंपित कर देने वाला था..... सुदंत की बहिन का रुदन भी कलेजे को कंपित कर देने वाला था।

किन्तु मृत मनुष्य को सभी धीरे-धीरे भूलते जाते हैं और एक दिन ऐसा आता है कि वह सदा-सदा के लिए विस्मृति के गर्त में विलीन हो जाता है।

छह महीने बाद वासरी का पुनः विवाह एक सुंदर पारधी के साथ कर दिया गया। सुदंत विस्मृत हो गया.....परन्तु उसकी वीरता यदा-कदा सबको याद आती रहती।

५. रुद्रयष

वाराणसी नगरी!

हजारों वर्षों से नवयौवना की भांति स्थित पूर्व भारत की एक महानगरी!

गंगा के तट-प्रदेश को अलंकृत करने वाली तथा राष्ट्र के प्राणों में परम आदर प्राप्त वाराणसी महानगरी!

शस्त्र, शास्त्र, कला, कर्मकांड, वेदाध्ययन, षड्दर्शन, व्याकरण, काव्य, संगीत आदि किसी भी व्यावहारिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान की संपदा प्राप्त करनी हो तो राष्ट्र के सभी बटुक, तरुण और पंडित वाराणसी के चरण चूमने आ

पहुंचतें और वर्षों की आराधना के पश्चात् इष्टसिद्धि कर अपनी जन्मभूमि की ओर प्रस्थित होते।

जैसे तक्षशिला महाविद्यालय लाखों विद्यार्थियों की व्यवस्था करता था, वैसे ही वाराणसी के गुरुकुल लाखों विद्यार्थियों को विविध विद्याओं का अध्ययन कराने में सक्षम थे।

वाराणसी केवल विद्याकेन्द्र ही नहीं था, वह विविध कारीगरी और व्यवसाय का भी महाकेन्द्र था।

जैसे नेपाल में रत्नकंबल का निर्माण होता था, जो एक अंगूठी में से आरपार निकल सकता था, वैसे ही वाराणसी कौशेय वस्त्र-निर्माण में बेजोड़ नगर था। दूर-दूर के व्यापारी यहां कौशेय वस्त्र खरीदने आते थे।

एक दृष्टि से यह नगरी प्रत्येक दृष्टि से सफल थी।

गंगातट के एक लघु उद्यान में एक छोटा-सा भवन था। वहां जैनदर्शन के महापंडित आर्यवल्लभ शास्त्री रहते थे। वे समग्र पूर्वभारत के पंडितों में अग्रणी थे। जब शास्त्रार्थ में मतभेद होता तब पंडितजी का निर्णय अंतिम माना जाता था।

महापंडित सुखी जीवन जी रहे थे। उनकी उम्र अभी पचास पार नहीं कर पाई थी। आरोग्य उत्तम था। स्वभाव स्वच्छ और सरल था। धन-संपत्ति यथेष्ट थी। दो सौ गायों का एक गोकुल था। एक बाड़ी थी..... एक अतिथिगृह था। उनकी पत्नी सुशीला यथार्थ नाम तथा गुण वाली थी। अवस्था में वह पंडितजी से बारह वर्ष छोटी थी।..... जब महापंडितजी ने विवाह रचा तब सुशीला केवल तेरह वर्ष की थी..... माता-पिता दीक्षित हो गए थे..... वह एक विधवा भगिनी के साथ रह रही थी..... प्रत्येक बात से सुखी पंडितजी संतानसुख से वंचित थे।

दोनों जैनधर्म के परम उपासक होने के कारण संतान के अभाव को कर्मफल मानते थे।..... सुशीला पंडितजी से दूसरा विवाह करने के लिए आग्रह करती रहती थी। परन्तु पंडितजी सदा इन्कार करते रहते। वे कहते—'प्रिय! भाग्य को बदला नहीं जा सकता। यदि अपने भवन में संतान के मधुरहास्य का गुंजारव होना होगा तो वह तेरे से ही होगा..... अन्य स्त्री का पाणिग्रहण कर मैं इस अधेड़ वय में परिग्रह क्यों बढ़ाऊं? संतान से स्वर्ग का सुख मिलता हो, यह मात्र मन की तरंग है। बहुधा संतान के कारण ही अत्यधिक दुःख भोगना पड़ता है।'

पति की इस बात पर सुशीला क्या कहे?

दिन बीते।

और सुशीला देवी को चालीसवें वर्ष में संतान की आशा बंधी।

सगर्भा होने के लक्षण प्रतीत होने लगे।

भवन में आनन्द का वातावरण सृष्ट हो गया।

महापंडित ने तिरपनवें वर्ष में प्रवेश किया और सुशीला देवी ने एक पुत्र का

प्रसव किया। भवन में झालर की झणकार गूंजने लगी।

जन्मोत्सव मनाया गया।

महापंडित ने बालक के कल्याण के निमित्त दान दिया।

महापंडित स्वयं ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता थे, फिर भी अपने संतान की जन्मपत्री उन्होंने अपने मित्र ज्योतिषी से बनवाई।

प्रसूतकाल पूरा हुआ। बालक का नाम रखा–रुद्रयश।

महापंडित बालक की जन्मपत्री देखकर विचारमग्न हो गए। बालक के छठे वर्ष में मातृ-वियोग के ग्रह प्रबल थे। एक योग ऐसा था कि या तो बालक राजा होगा या महान् योगी..... परन्तु पिता के घर का त्याग..... खून, चोरी.....लूट.....विचार करते-करते महापंडित कांप उठा। कैसे क्रूर ग्रह!

पंडितजी को विचारमग्न देखकर सुशीला देवी बोली–'क्या देख रहे हैं?'

'रुद्रयश की कुंडली!'

'आप तो समर्थ ज्योतिषी हैं..... मेरे लाल का भविष्य कैसा है?'

'प्रिये! कुंडली बहुत विचित्र है..... बहुत खतरनाक है..... माता के लिए पीड़ाकारक ग्रह है.....'

सुशीला बोली–'संतान का योग माता के लिए कभी पीड़ाकारक नहीं होता। मेरा लाल मेरे आंगन में प्रकाश फैलाने आया है। इसको हंसते-खेलते और आप जैसा महापंडित बना देखकर मैं यहां से विदा हो जाऊं तो मेरे कोई न्यूनता नहीं रहेगी..... परन्तु आप इतने गहरे विचारों में क्यों उतर रहे हैं? इसका भावी मुझे बताएं.....'

इसका जैसा नाम है वैसी ही कुंडली है। प्रिये! इस बालक का वर्तमान जीवन बहुत रौद्र होगा और भावी जीवन महान् होगा..... यह या तो किसी देश का राजा बनेगा अथवा.....।

'कहते-कहते क्यों रुक गए?'

'अथवा महातेजस्वी महापुरुष होगा..... किन्तु.....' कहते-कहते महापंडित विचारमग्न हो गए।

सुशीला ने गोद में सो गए बालक के सिर पर स्नेहिल हाथ फेरते हुए कहा–'फिर विचार में खो गए। क्या इसका आयुष्य बल.....'

'पूर्ण है..... मुझे यह आश्चर्य हो रहा है कि उत्तरावस्था की ऐसी महान् कुंडली पूर्वावस्था के इतने अवरोधों से कैसे भरी पड़ी है! प्रिये! यह सच है, विधाता के लेख को कोई नहीं पलट सकता। अनेक बार मानवी-विज्ञान यहां वामन हो जाता है।' यह कहकर पंडितजी ने मां की गोद में सो रहे बच्चे की ओर देखा..... प्रतीत हो रहा था मानो पंडितजी पुत्र के भाग्य को परखने के लिए व्यथित हो रहे हैं।

प्रौढावस्था में प्राप्त पुत्र के लाड़-प्यार में एक पूरा वर्ष बीत गया।

रुद्रयश मां जैसा सुंदर नहीं था, परन्तु पिता के समान गेहुएं वर्ण वाला था..... परन्तु था वह नीरोग।

पांचवें वर्ष में रुद्रयश को पाठशाला में पढ़ने भेजा।

ज्यों ही रुद्रयश का छठा वर्ष प्रारंभ हुआ, पंडित गहन चिंता में फंस गए। उनके हृदय में माता के वियोग के ग्रह घूम रहे थे। परन्तु सुशीला पुत्र को देख-देखकर आनन्दित होती। प्रतीत हो रहा था कि जीवन की समग्र अभिलाषा पूरी होने का संतोष उसके नयन-वदन से बाहर फूट रहा था।

भावी की रेखा को कौन मिटा सकता है। महापंडित का संशय सच निकला..... रुद्रयश के छठे वर्ष के तीन मास पूरे हुए और एक आकस्मिक घटना घट गई..... सुशीला कुछ स्त्रियों के साथ गंगा-स्नान करने गई थीं और एक नौका में बैठकर बारह स्त्रियां सुपार्श्वनाथ के मंदिर वाले घाट की ओर जा रही थी। अचानक नौका उलटी और दो स्त्रियां गंगा के प्रवाह में बह गईं। एक महापंडित की पत्नी सुशीला थी और दूसरी पड़ोसिन थी। अन्य दस स्त्रियों को मछुआरों ने प्रयत्न से बचा लिया..... परन्तु ये दोनों स्त्रियां दो कोस की दूरी पर निर्जीव अवस्था में मिली थीं।

महापंडित के हृदय में संशय का जो शल्य चुभ रहा था, वह अन्त में सत्य निकला और रुद्रयश को संभालने की जिम्मेवारी स्वयं पर आ गई।

माता की संभाल में और पिता की संभाल में जमीन-आसमान का अन्तर होता है। स्त्रियोचित कार्य पुरुष सहजरूप से संपन्न नहीं कर सकते। एकाध वर्ष पश्चात् महापंडित ने देखा कि रुद्रयश का स्वभाव तामसिक बन रहा है। वह घर में रहने के बदले मोहल्ले के बच्चों के साथ खेलने-कूदने में अधिक रस लेता था।

इस प्रकार उसके चार वर्ष और बीत गए। रुद्रयश पढ़ने का प्रयत्न तो करता ही था। परन्तु महापंडित ने जैसा विकास चाहा था, वैसा विकास उसमें हो नहीं रहा था। माता-विहीन पुत्र पर कठोरता बरतना महापंडित नहीं चाहते थे। रुद्रयश का व्याकरणज्ञान और सामान्यज्ञान कुछ ठीक था..... परन्तु साहित्य, काव्य और जैनदर्शन में वह सर्वथा मंद था।

रुद्रयश चौदह वर्ष का किशोर हुआ। उसका शरीर खिल उठा। उसकी भुजाएं शक्तिशाली थीं। आसपास के किशोरों के साथ मारपीट करना, उन्हें पछाड़ना आदि के कारण शिकायतें आना प्रतिदिन का कार्य बन गया था। पंडितजी इस विषय में रुद्रयश को धमकाते, परन्तु रुद्रयश अपनी भूल स्वीकार कभी नहीं करता। यह दूषण उसमें वृद्धिंगत हो रहा था।

और पन्द्रहवें वर्ष में प्रवेश करते ही रुद्रयश पाठशाला में न जाकर आवारा-स्थलों में घूमने में अधिक रस लेने लगा।

एक दिन रुद्रयश अपने दो समवयस्क साथियों के साथ गंगा-तट पर घूम रहा था। आज उसने साथियों के साथ यह निर्णय किया कि मेरे पिताजी के पास प्रचुर धन हैं, फिर भी वे मुझे नहीं देते। अतः अपने आपको आनन्दित करने के लिए मुझे कुछ धन अवश्य एकत्रित करना है।

दोनों मित्र भी ऐसे ही थे और तीनों ने छोटी-मोटी चोरियां करने का निर्णय लिया।

और आज वे चोरी करने के मन से घूम रहे थे।

गंगा के घाट पर एक यात्री-परिवार भावपूर्वक गंगास्नान करने आया था। इस परिवार की एक वृद्धा सभी सदस्यों के कपड़े-गहने संभाल कर वहीं बैठी थी। परिवार के अन्य सदस्य गंगास्नान में लीन बन गए थे।

रुद्रयश बाज पक्षी की भांति शिकार की खोज कर रहा था। उसकी दृष्टि इस यात्री-परिवार पर पड़ी। उसने अपने साथियों से कहा–देखो, सामने गंगा जल में एक अधेड़ उम्र की बहिन नहा रही है। देख रहे हो?

साथियों ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी।

रुद्रयश बोला–'उस बहिन की कटि में स्वर्ण मेखला है। वह बहिन इतनी मोटी है कि कटिमेखला उसका पूरा स्पर्श भी नहीं कर पा रही है। मैं जांघिया पहन कर नदी में उतरता हूं·····तुम दोनों तीसरे घाट पर मिलना·····मैं अभी कटिखमेला लेकर आता हूं।'

स्वर्ण की कटिमेखला!!

'क्या तुम्हें भय लग रहा है? चोरी करनी ही है तो फिर ऐसे हाथ मारना है कि दस-बीस दिन तक मौज बन जाए। दो चार रुपयों के लिए क्या चोरी की जाए। यह कहकर रुद्रयश ने अपने कपड़े उतार कर एक साथी को दे दिए और केवल जांघिया पहन कर वहां से चल पड़ा और साथियों को तीसरे घाट पर रवाना किया।'

कुछ ही क्षणों में रुद्रयश स्नान कर रहे परिवार के बीच घुस गया····· वे सभी घुटने तक पानी में ही खड़े थे और गंगा मैया का स्तोत्रपाठ करते-करते स्नान कर रहे थे।

अचानक वह मोटी बहिन चिल्लाई····· उसका पति भी स्नान कर रहा था, वह उस ओर मुड़ा और पत्नी के पास आकर पूछा–'क्या हुआ?'

'किसी ने मेरी कटिमेखला खींची····· अरे, कहां गई मेरी स्वर्ण की कटिमेखला?'

'हैं? परन्तु यहां तो कोई नहीं दीख रहा है।' पति ने चारों ओर देखा।

पत्नी बोली–'मुझे भान है कि एक लड़के ने मेरी कटिमेखला पकड़ी है, किन्तु मैं उसे पकडूं उससे पूर्व ही मैं गिर पड़ी।'

उसका देवर कुछ दूरी पर था। वह भी आ पहुंचा..... अन्य स्त्रियां भी आ पहुंचीं। देवर बोला—'भाभी! कोई कछुआ तो नहीं था न?'

'क्या कछुआ आदि जलचर प्राणी स्वर्णमेखला को खींचेगा?'

'परन्तु यहां तो कोई दीख ही नहीं रहा है।'

कटिमेखला की खोज प्रारंभ हुई। गंगा में गोताखोर उतर पड़े। परन्तु.....।

कटिमेखला को झपट कर रुद्रयश पानी में ही तैरता हुआ दूर जा निकला। श्वास लेने के लिए सिर निकाला। फिर वह निश्चिन्तता से तैरता हुआ तीसरे घाट की ओर चल पड़ा। तीसरे घाट पर अनेक नर-नारी थे। उसके साथी भी एक ओर खड़े थे। उनके पास पहुंचकर वह एक चादर को ओढ़े, उनके साथ निर्जन स्थान की ओर चल पड़ा।

वस्त्र-परिवर्तन कर, कटिमेखला को चादर में छुपा, रुद्रयश साथियों से बोला—'बोलो, अब इसे बेचना कहां है?'

एक साथी बोला—'इसे बाजार में तो बेचा नहीं जा सकता। यदि हम किसी द्यूत क्रीड़ागृह में जाएं तो वहां यह बेची जा सकती है।'

तो चलें, हम वहीं इस माल को बेचेंगे, रुद्रयश ने कहा।

तीनों मित्र द्यूतगृह की ओर प्रस्थित हुए। वहां पहुंचकर रुद्रयश ने कटिमेखला बाहर रखी..... लगभग सौ सोनैयों की मूल्य वाली कटिमेखला का केवल पचीस सोनैये ही मिले। द्यूतगृह से वे बाहर आए। रुद्रयश ने दोनों साथियों को पांच-पांच सोनैया दिए। एक मित्र बोल उठा—'रुद्रयश! यह कैसा न्याय? सबको समान मिलना चाहिए।'

'साहस मैंने किया, जोखिम मैंने उठाई और गंगा के तीव्र प्रवाह में मैं उतरा..... बोलो..... समान भाग कैसे मांग रहे हो? फिर भी मैंने तुम दोनों को पांच-पांच सोनैये दिए हैं..... और जिस दिन तुम भी मेरे जैसा साहस करोगे तो मैं समान भाग की मांग नहीं करूंगा..... तुम जो दोगे, वही मैं लूंगा।' रुद्रयश ने यह कहकर दोनों को एक-एक मुद्रा और दी।

यह प्रथम चोरी थी और माल को यथास्थान पहुंचाना था, अत: रुद्रयश को घर पहुंचने में विलंब हो गया..... वह मध्याह्न में घर पहुंचा..... महापंडित प्रतीक्षा में बैठे थे। और इतना विलंब हो जाने पर उन्होंने रुद्रयश को खोजने के लिए दो आदमियों को भेज रखा था।

अपने एकाकी पुत्र को इतने विलंब से आते देख पंडितजी ने वेदनाभरे स्वरों में कहा—'रुद्र! इतना विलंब कैसे हुआ? मुझे तो बहुत चिंता हो गई थी। माधव और लक्ष्मण तुम्हें ढूंढने कब के ही निकल गए हैं..... इतना विलंब उचित नहीं है।'

'पिताजी! कोई परदेशी यजमान गंगातट से पांच ब्राह्मण किशोरों को

आग्रहपूर्वक भोजन के लिए ले गया था। इसलिए मुझे भी जाना पड़ा।' रुद्रयश ने बहाना बनाया।

मनुष्य जब जिन्दगी के एक सोपान से लड़खड़ा जाता है अथवा एक दूषण को अपना लेता है तो फिर वह लड़खड़ाता ही जाता है और धीरे-धीरे दूषणों की एक लंबी परंपरा का वह मालिक बन जाता है।

पिता ने पुत्र की बात मान ली, परन्तु उपालंभभरे स्वरों में कहा–'पुत्र! हम अयाचक ब्राह्मण हैं। इस प्रकार कहीं आना-जाना उचित नहीं होता..... आगे से याद रखना.....'

'जी' कहकर रुद्रयश अपने कमरे में चला गया।

पहली सफलता से रुद्रयश का हौंसला बढ़ चुका था..... धीरे-धीरे वह और आगे बढ़ा और चार-छह अपराधीवृत्ति के मित्र उसे मिल गए..... जो पंडित बाहर का भोजन करना पाप मानता था, वही पंडित-पुत्र रुद्रयश बहुधा बाहर ही खाता रहता था।..... इतना ही नहीं, वह पिताजी को ज्ञात न हो इस प्रकार रात्रि में द्यूतगृह पहुंच जाता था..... छोटी-छोटी चोरियां करना तो इसके लिए बांएं हाथ का खेल जैसा बन गया था।

पाप का मार्ग सहज-सरल होता है, इसीलिए मनुष्य उसके परिणामों का विचार किए बिना उसके प्रति ललचाता रहता है।

रुद्रयश शराब भी पीने लगा..... एक रात उसके साथी उसको घर तक पहुंचा गए।

महापंडित आज रात में अचानक उठे और रुद्रयश के कमरे में उसे खोजने गए..... किन्तु पुत्र की शय्या सूनी पड़ी थी..... इससे वे मर्माहत हुए और पुत्र की प्रतीक्षा में जागते हुए बैठे थे। और आधी रात के बाद शराब के नशे में धुत रुद्रयश घर पहुंचा.....

महापंडित पुत्र की यह दशा देखकर चौंके, पर बोले कुछ नहीं.....

रुद्रयश सीधा अपने कमरे में गया और शय्या पर सो गया।

महापंडित रुद्रयश की शय्या के निकट गए.....

शराब की दुर्गन्ध आ रही थी।

महापंडित दो क्षण विचारमग्न होकर खड़े रहे..... फिर वे बाहर आए..... उन्होंने सोचा–'ऐसे दुष्ट प्रकृति वाले पुत्र से तो पुत्ररहित होना अच्छा है। उन्होंने माधव को जगाया। माधव बोला–'क्यों पंडितजी?'

'मेरे साथ चल.....।'

माधव पंडितजी के पीछे-पीछे रुद्रयश के कमरे में गया। महापंडित बोले–माधव! यह रुद्रयश चोरियां करता है, ऐसा मैंने सुना था परन्तु माना नहीं था..... यह जुआ भी खेलता है, यह भी मैंने सुना था..... परन्तु मैंने विश्वास

नहीं किया था..... आज मैं अपनी आंखों से देख रहा हूं कि यह सुरापान करके आया है। तू अभी पानी का एक घड़ा भर कर यहां ला।

माधव तत्काल पानी लेने निकल पड़ा।

६. लूट-मार की योजना

माधव पानी का घड़ा लेने गया था..... महापंडित ने मन ही मन सोचा..... नहीं, नहीं, इस प्रकार उतावल नहीं करनी चाहिए। प्रातः रुद्रयश को मैं समझाऊंगा..... पुनः यदि वह ऐसी भूल करेगा तो मैं कठोरता बरतूंगा।

ऐसा सोचकर वे कमरे से बाहर आए। माधव घड़ा लेकर आ गया था..... महापंडित ने उसे इशारे से भेज दिया और शयनखंड का द्वार बंदकर अपने खंड में आ गए।

रात्रि का चौथा प्रहर चल रहा था। महापंडित चिंतामुक्त होकर शौचार्थ निकल पड़े।

अनेक चिंताएं ऐसी होती हैं कि उनको दूर करने का प्रयास करते हैं और वे व्यक्ति को दबोच डालती हैं। महापंडित के लिए भी ऐसा ही हुआ। वे प्रतिदिन गंगातट के किनारे एकाध कोस दूर जाते थे और लौटते समय स्नान कर फिर पूजा-पाठ करते थे।

चलते-चलते उसके मन में विचार आया कि रुद्रयश बहुत चंचल हो गया है। चोरी, द्यूत, असत्य के साथ-साथ मद्यपान भी प्रारंभ कर दिया है..... यदि वह नहीं समझेगा तो मेरी परम्परा को विकृत कर देगा। अब इसको कैसे समझाया जाए?

यह सच है कि दूसरों को प्रतिबोध देने वाले निपुण व्यक्ति स्वयं के बाल-बच्चों को नहीं समझा पाते।

पंडितजी के मन में यह भी विचार आया कि यदि रुद्रयश का विवाह किसी योग्य कन्या से कर दिया जाये तो संभव है सब कुछ ठीक हो जाए..... नहीं, नहीं, ऐसी छोटी अवस्था में विवाह करना उचित नहीं होगा और यदि ऐसा करने पर भी यह रास्ते पर न आए तो बेचारी उस कन्या का जीवन तो बिगड़ ही जाएगा..... नहीं..... नहीं..... ऐसा सोचना ही नहीं चाहिए।

इस प्रकार विचारों के भंवर में फंसे पंडितजी धीरे-धीरे अपने घर आए और पूजागृह में चले गए। अभी सूर्योदय होने में दो घटिका शेष थी।

सूर्योदय हुआ। दिवस का प्रथम प्रहर पूरा हुआ तब रुद्रयश जागा..... शय्या पर बैठा..... गत रात्रि के मद्यपान का नशा अभी उतरा नहीं था। बाहर माधव खड़ा था। माधव से उसे ज्ञात हुआ कि पिताजी पूजागृह में हैं। इसलिए शीघ्रता से प्रातःकर्म कर, स्नान से निवृत्त हो, दुग्धपान कर घर से निकलने की

तैयारी करने लगा। उस समय माधव ने आकर कहा–'पिताजी आपको याद कर रहे हैं।'

'अभी आ रहा हूं' कहकर कंधे पर कौशेय की शाल रखकर वह पिताजी के खंड में गया।

महापंडित ने अपने पुत्र को सामने बैठने का संकेत किया।

रुद्रयश पिता को नमस्कार कर एक आसन पर बैठ गया। उसका मन इसलिए बेचैन हो रहा था कि उसके साथी इस समय उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। आज वे सभी मिलकर एक बड़ी डकैती करने की योजना बनाने वाले थे।

पन्द्रह वर्ष पूरे होने वाले थे। रुद्रयश के अभी मूंछें भी नहीं आई थीं। कच्ची बुद्धि का यह युवक किस मार्ग की ओर अग्रसर हो रहा है। संगत का दोष अवश्यंभावी है।

महापंडित बोले–'रुद्रयश! तू बहुत देरी से उठा? अभ्यास को अधूरा छोड़ तूने पाठशाला जाना छोड़ दिया, किन्तु ब्राह्मण के कर्त्तव्य का क्यों त्याग किया?'

'बापू! मैंने कर्त्तव्य का त्याग नहीं किया है। गत रात्रि में पूरी नींद नहीं आई, इसीलिए आज विलंब से उठा। आपकी आज्ञा क्या है?' रुद्रयश ने पूछा।

'मैंने सुना है कि तू चोरियां करता है।'

रुद्रयश जोर से हंसा और हंसते-हंसते बोला–'ऐसे भयंकर असत्य को आपने कैसे मान लिया? एक समर्थ महापंडित का पुत्र क्या चोरी करेगा? नहीं, पिताजी! मेरे किसी विरोधी ने आपको यह बात कही है।'

'अच्छा, तू जुआ भी खेलता है। क्यों?'

'जुआ!! मैं कुछ साहसिक वृत्ति वाला युवक हूं। कभी कोई गंगा में डूब रहा हो तो मैं तत्काल उसको बचाने के लिए गंगा में छलांग लगा देता हूं..... इस प्रकार मैं अपने जीवन का जुआ तो अवश्य खेलता हूं..... अन्य जुए की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।'

'क्या यह सब सच कह रहे हो?'

'हां पिताजी! आपके समक्ष मैं कभी असत्य नहीं कहूंगा.....। आप सच मानें।'

'बहुत अच्छा.....। कल रात में तू कहां गया था?'

'मैं तो अपने कमरे में सो रहा था।'

'झूठ मत बोल। मैंने कल मध्यरात्रि में तेरे कमरे में तेरी खोज की थी। शय्या खाली पड़ी थी।'

बिना किसी हिचक के रुद्रयश ने स्वाभाविक रूप से कहा–'ठीक है। रात्रि में मैं दो बार शौच गया था..... संभव है जब आपने मेरी शय्या देखी तब मैं शौच गया हुआ हूंगा।'

'ऐसा भी संभव है..... फिर भी मैं तेरी चिंता में बरामदे में ही बैठा था..... तू बहुत रात बीते भवन में आया..... उस समय तू बेभान था। तेरे पैर लड़खड़ा रहे थे... तू सीधा अपने कमरे में गया और सो गया..... दीपक भी नहीं बुझाया..... मैं तेरी शय्या के निकट आया..... तेरे मुंह से मद्य की दुर्गन्ध आ रही थी और तेरा चेहरा भी विकारग्रस्त था..... मैंने उसी समय माधव को जगाया और तेरे मुंह पर ठंडा पानी डालने का विचार किया, किन्तु फिर मैंने सोचा कि तुझे जगाने के बदले प्रात:काल ही इस विषय की चर्चा की जाए।

रुद्रयश के चेहरे की रेखाएं बदल चुकी थीं..... फिर भी वह बोला–'पिताजी! आपको कोई दु:स्वप्न तो नहीं आया न?'

'अभी भी तू झूठ बोल रहा है। देख रुद्र!, एक ब्राह्मण का पुत्र मद्यपी, जुआरी और चोर बने यह केवल ब्राह्मण जाति के लिए नहीं, पूरे राष्ट्र के लिए दु:खदायी होता है। तू एक शांत पिता के समक्ष इस प्रकार असत्य बोल रहा है, क्या तेरा हृदय नहीं कांपता? ब्राह्मण के कर्त्तव्य मार्ग से च्युत होकर क्या तू स्वयं का अनिष्ट नहीं कर रहा है।'

'पिताजी.....'

बीच में ही पंडितजी बोले–'रुद्र! मैं आज तक के तेरे सारे दोषों को पचा लेता हूं..... यदि आगे कोई भी दूषण तेरे में मुझे दिखलाई देगा तो मैं कड़े से कड़ा दंड दूंगा।'

'बापू! सच, सच बता दूं?'

'हां, बोल।'

'कल रात में मैंने भांग पी ली थी..... शराब को तो मैंने अभी तक आंखों से भी नहीं देखी। भय के कारण मैंने असत्य कहा, इसके लिए क्षमायाचना करता हूं।'

महापंडित बोले–'तेरी अवस्था अभी छोटी है। अभी यौवनकाल से तू कुछ दूर है..... यदि इस अवस्था में तू जागरूक नहीं रहेगा तो मेरे लिए तेरा जीवन महावेदनामय हो जाएगा। सबसे पहले तू अपने समस्त दोषों का निवारण कर..... तेरी मां यदि आज जीवित होती और तेरी यह अवस्था देखती तो निश्चित ही वह विष पीकर जीवन-लीला समाप्त कर देती..... परन्तु मैं तुझे क्षमा करता हूं और स्वयं को सुधारने का अवसर देता हूं।'

रुद्रयश ने पिताजी का चरण-स्पर्श किया और कहा–'बापू! आपने मुझे स्वर्णिम अवसर दिया है। मैं धन्य हो गया।'

पंडित ने रुद्रयश के सिर पर हाथ रख कर कहा–'पुत्र! तेरा कल्याण हो। तेरी माता की आत्मा को शांति मिले।'

रुद्रयश के मन में वे प्रतीक्षारत मित्र घूम रहे थे। पिता को नमन कर वह

सीधा गंगा-तट पर पहुंचा।

रुद्रयश के तीन मुख्य साथी बहुत समय से उसकी राह देख रहे थे। रुद्रयश को देखते ही सभी के हृदय प्रफुल्लित हो गए।

रुद्रयश ने निकट आकर कहा—'क्या चन्द्र नहीं आया?'

'चन्द्रमोहन आज पकड़ा गया है····कल रात में उसने कुछ अधिक मदिरा पी ली थी। उसके पिता को ज्ञात हुआ, इसलिए उसे एक कमरे में बंद कर रखा है।'

मित्रों के साथ रेशमी बालुका रेत में बैठते हुए रुद्रयश बोला—'मैं तो बच गया····· मेरे पिताजी को भी पता लग गया था·····परन्तु मैंने उन्हें अपनी बातों में फंसा लिया।' अच्छा, उस योजना का क्या हुआ।

'अच्छा अवसर हस्तगत हुआ है। इस नगरी की प्रख्यात नर्तकी सौभाग्यपुर के राजा के पास गई है····· राजा उसे दस हजार सोनैयों से पुरस्कृत करेगा····· विविध आभूषण भी उसे प्राप्त होंगे·····' एक साथी ने कहा।

'सौभाग्यपुर यहां से कितना दूर है?'

'लगभग चालीस कोस दूर है तथा वहां गंगा-मार्ग से भी पहुंचा जा सकता है।'

'हुं·····किन्तु हम सौभाग्यपुर जाएं, यह उचित नहीं होगा।' रुद्रयश ने कहा।

'सौभाग्यपुर कहां जाना है! हमें तो यहां से दस कोस की दूरी पर कदंब घाट पर ही जाना है····· नर्तकी नीलमणी आज से छठे दिन सोमवार को प्रातः वहां से प्रस्थित होगी। नाविकों की गणना के अनुसार नर्तकी सायंकाल कदंबघाट के पास आ जाएगी और वहां विश्राम करेगी····· और फिर रात्रि के दूसरे प्रहर में वहां से प्रवास शुरू करेगी और प्रातःकाल यहां आ पहुंचेगी।'

'यदि सोमवार को वहां से नहीं चलेगी तो?'

'यह तो निश्चित कार्यक्रम है' साथी बोला।

'और यदि कदंबघाट पर न रुक कर सीधा यहीं प्रवास करे तो? विलंब हो जाए तो·····?'

'ऐसे तो गणना ठीक कर ली गई है····· यदि गंगा में कोई विघ्न आ जाए तो विलंब हो सकता है, अन्यथा सोमवार को सायं कदंबघाट पहुंचने के समाचार मुझे प्रामाणिक स्रोत से प्राप्त हुए हैं····· फिर केशव को हम सौभाग्यपुर भेज दें····· वह हमें सही समाचारों से अवगति दे देगा।'

रुद्रयश विचारमग्न हो गया। कुछ क्षणों बाद वह बोला—'अवसर तो ठीक है····· परन्तु नीलमणी के साथ बड़ा काफिला है और संभव है साथ में दो-चार रक्षक भी होंगे।'

'हम सभी बारह साथी हैं····· शस्त्र भी हमारे पास होंगे····· और इस लूट

में हमें सबको समान हिस्सा देना होगा····· क्योंकि नीलमणी का एक दास भी गुप्तरूप से हमारे साथ रहेगा।'

'ठीक है····· अच्छा, अब हमें उपयुक्त तैयारी करनी चाहिए।' यह कहकर रुद्रयश ने इस लूट की स्वीकृति दे दी।

चारों साथी उठे। एक ने रुद्रयश का हाथ पकड़ते हुए कहा–'रुद्र भाई! आज रात को रामलीला देखने जाना है न?'

'तुम सभी जाओ····· दो दिन तक मैं घर से नहीं निकल सकूंगा, क्योंकि पिताजी को थोड़ा विश्वास दिलाना होगा।' रुद्रयश ने कहा।

'पानागार का आनन्द! वासुकी के द्यूतगृह में·····' दूसरे साथी ने कहा।

रुद्रयश चलते-चलते रुका और दो क्षण सोचकर बोला–'रामलीला देखने के लिए तो मैं नहीं आ सकता, क्योंकि यह तो प्रातःकाल तक चलती है····· पानागार में भी पीने की मर्यादा रखनी होगी। संभवतः मैं पिताजी को सुलाने के बाद, जिस किसी उपाय से वहां से छिटककर वासुकी के द्यूतगृह में अवश्य पहुंच जाऊंगा। तुम वहीं मेरी प्रतीक्षा करना।'

तीनों मित्रों का साथ छोड़कर रुद्रयश अपने भवन की ओर चल पड़ा।

घर आकर रुद्रयश ने पिताजी के साथ भोजन किया।

आज चार-पांच पंडित भी अतिथि के रूप में आए हुए थे। सभी भोजन से निवृत्त होकर महापंडित के कमरे में गए। रुद्रयश अपने कमरे में आया और शय्या पर करवटें बदलने लगा। उसने सोचा, अतिथि यदि आज रात को यहीं रुकेंगे तो पिताजी के साथ शास्त्रचर्चा रातभर चलेगी····· तो फिर मैं वासुकी के द्यूतगृह में कैसे जा पाऊंगा?

आपत्ति में मनुष्य को उपाय ढूंढने की तमन्ना जागती है। रुद्रयश भले ही तरुण हो, वह उपाय ढूंढने में निपुण था। उसने एक योजना बनाई। रात्रि के प्रथम प्रहर के बाद सोना और कमरे का द्वार भीतर से बंद कर लेना और पिछवाड़े की खिड़की से बाहर कूदकर निकल जाना और खिड़की को पुनः बंद कर देना और देर रात में लौटकर इसी खिड़की से भीतर कमरे में प्रवेश करना।

मन में यह उपाय उभरते ही उसकी समस्त चिन्ता दूर हो गई और वह सीधा पिताजी के खंड में गया।

पांचों पंडित और महापंडित मुखवास ग्रहण कर सामान्य चर्चा कर रहे थे। माधव अतिथियों के लिए बिछौने बिछा रहा था।

रुद्रयश ने सबसे पहले पिताजी के चरण छूए। फिर पांचों पंड़ितों के चरण छूए और एक ओर बैठ गया। महापंडित ने पुत्र की ओर देखकर कहा–रुद्र! ये पांचों विद्वान् उज्जयिनी से आए हैं····· यहां लगभग पन्द्रह दिन रुकेंगे।

'बहुत उत्तम·····' रुद्रयश ने कहा। फिर वह उठकर बोला–'पिताजी! कुछ कार्य है?'

'क्या तू बाहर जा रहा है?'

'नहीं, कोई कार्य हो तो यहां रुकूं', अन्यथा मेरे कमरे में·····

'अच्छा तू जा····· कोई कार्य नहीं है।' महापंडित ने कहा। रुद्रयश पुनः सबको नमन कर चला गया।

'अतिथि यहां पन्द्रह दिन रुकेंगे। ओह! नीलमणी को लूटने की योजना····· ओह!' मन में ऐसे विचार कर वह अपने कमरे में जाकर विश्राम करने बैठा।

रात्रि का पहला प्रहर बीत गया। तत्काल रुद्रयश अपने कमरे के वातायन के मार्ग से सहजरूप में छिटक कर चला गया।

रविवार को ही केशव का सौभाग्यपुर से सही संदेश आ गया–'नीलमणी सोमवार के प्रातःकाल सूर्योदय के समय प्रस्थान करेगी और कदंबघाट पर सायंकालीन भोजन से निवृत्त होकर रात्रि के दूसरे प्रहर में वहां से रवाना होगी। मैं पश्चिम रात्रि में रवाना होकर कदंबघाट पर पहुंच जाऊंगा····· तुम सब तैयार रहना।'

इन समाचारों से रुद्रयश की टोली आनन्दमग्न हो गई। काना नाविक का बजरा-कमरेदार बड़ी नौका को पहले से ही इन्होंने तय कर लिया था। और सोमवार के सूर्योदय के पश्चात् बारह साथी कदंबघाट की ओर प्रस्थित हो गए।

रुद्रयश ने एक दिन पूर्व ही यात्रा का बहाना बना कर पिताजी से आज्ञा प्राप्त कर ली थी। महापंडितजी का मन नहीं था, फिर भी पंडितों के बीच रुद्रयश ने आज्ञा मांगी थी, इसलिए उन्होंने आज्ञा दे दी।

कच्ची बुद्धि की योजनाएं बहुधा संकट में डाल देती हैं।

सौभाग्यपुर के महाराजा ने नर्तकी नीलमणी की नृत्यकला पर मुग्ध होकर उसका बहुत सम्मान किया और जलमार्ग निर्भय होने पर भी महाराजा ने एक अन्य नौका द्वारा दस सशस्त्र सैनिक रक्षकों को साथ भेजा। किन्तु यह व्यवस्था केशव ज्ञात नहीं कर पाया और वह कदंबघाट पर पहुंचने के लिए पश्चिम रात्रि में रवाना हो चुका था।

रुद्रयश मध्याह्न से पूर्व ही कदम्बघाट पहुंच गया। प्रवास की मौज-मस्ती के लिए मद्यभांड और मिठाइयों से भरे पात्र साथ में ही थे।

कदंबघाट से कदंब ग्राम लगभग एक कोस दूर था····· परन्तु घाट पर एक सुंदर पांथशाला थी····· रुद्रयश ने पांथशाला में रुकना उचित नहीं माना····· और पांथशाला में नीलमणी के लोग रसोई बनाने आ पहुंचे थे। नीलमणी का वह विद्रोही दास भी आ गया था। वह रुद्रयश को एकान्त में मिला और बोला–'तुम सब अपनी नौका में ही रहना और नौका को दूर रखना। देवी नीलमणी यहां आ

जाएगी तथा चार नाविकों को तथा दो रक्षकों को नौका की संभाल करने का आदेश देकर सभी पांथशाला में आ जाएंगे। तुम सब अवसर देखकर नौका को लूट लेना।'

यह बात बताने वाले उस धोखेबाज दास को भी यह ज्ञात नहीं था कि दस रक्षक साथ में हैं।

सभी साथी नौका में चले गए और उसे घाट से दूर रखा गया।

मैरेयपान का दौर प्रारंभ हुआ····· मिठाई के बर्तन खुले और अनगढ़ जवानी की मस्ती उछलने लगी।

मध्याह्न के बाद केशव भी आ गया।

नर्तकी का बजरा सूर्यास्त के पश्चात् आया। घाट पर होने वाला कलरव रुद्रयश और उसके साथियों ने सुना।

सैनिकों का बजरा भी आ पहुंचा।

लगभग दो घटिका के बाद नीलमणी, उसके वाद्यकार नृत्याचार्य, दासियां, तीन अन्य नर्तकियां और अन्यान्य व्यक्ति पांथशाला की ओर अग्रसर हुए।

स्वर्णमुद्राओं, अलंकारों तथा बहुमूल्य वस्तुओं की चार पेटियां सैनिकों के बजरे में थीं, इसलिए सभी रक्षक उस बजरे में रुक गए।

और अपक्व बुद्धि के तरुण बजरा लूटने की इच्छा से लुकते-छिपते किनारे पर चलने लगे। उनको यह कल्पना भी नहीं थी कि सौभाग्यपुर के रक्षक सैनिक भी साथ ही हैं।

परंतु दूर से दो बजरे देखकर रुद्रयश चौंका····· उसने धीरे से कहा—'यहां तो एक नहीं, दो बजरे हैं।'

'यह कैसे हुआ?'

'संभव है कि दूसरा बजरा अन्य यात्रियों का हो।' एक साथी ने कहा।

'तब तो दुगुना लाभ हुआ····· हम दोनों बजरों को लूटेंगे' कहकर रुद्रयश आगे बढ़ा।

शस्त्रों में उनके पास केवल तलवारें, भाले और क्षुरिकाएं थीं और कोई साधन नहीं था।

अंधकार फैल चुका था और दोनों बजरों में जलते हुए दीपक मंद-मंद प्रकाश फैला रहे थे।

केशव ने एक-एक कर दोनों बजरों को देखा... भीतर कोई मनुष्य है, ऐसा प्रतीत नहीं हो रहा था····· नाविक भी नहीं दीख रहे थे।

रुद्रयश ने साथी से कहा—'अब क्या करना है?'

'और करना ही क्या है? बजरे पर बाज की तरह टूट पड़ें····· आसपास में कोई है तो नहीं? हम जब तक बजरे के सामान को हस्तगत करेंगे तब तक काना

भी आ पहुंचेगा। हमें जो कुछ करना है, उसे शीघ्रता से ही कर देना है..... पांथशाला से कोई बजरे में आए उससे पूर्व ही हमें यहां से नौ दो ग्यारह हो जाना है। रुद्रयश ने कहा।'

और उसी क्षण रुद्रयश सहित तेरह साथी लुकते-छिपते बजरे की ओर अग्रसर हुए।

७. डाकूओं की टोली में

अपरिपक्व तेरह साथी..... लूट के मार्ग पर!

बजरे के रक्षक सैनिक अपने बजरे में शांत बैठे थे। उनमें से एक बाहर के उपवन में खड़ा था..... उसकी दृष्टि अचानक नदी के किनारे-किनारे आने वाले युवकों की टोली पर पड़ी। अंधकार के कारण आने वालों की संख्या का अनुमान करना कठिन हो रहा था, किन्तु आने वाले छिपते-छिपते धीरे-धीरे आ रहे हैं, यह उसने अनुमान लगा लिया। उसके मन में संदेह हुआ और उसने भीतर जाकर आराम से बैठे सैनिकों से धीरे से कहा–'दस-बारह पुरुषों की टोली देवी के बजरे की ओर सावधानीपूर्वक जा रही है।'

'यह हो ही नहीं सकता।' कहकर नायक खड़ा हुआ और बजरे के वातायन से देखने लगा..... उसने देखा..... लुकते-छिपते कितने व्यक्ति देवी के बजरे की ओर बढ़ रहे हैं और गंगा में उतर रहे हैं..... उनके हाथों में शस्त्र भी हैं। वह तत्काल बोला–'सभी तत्काल तैयार हो जाएं..... अवश्य ही कोई दुष्ट लोग लगते हैं। यदि देवी के आदमी हैं तो वे लुकते-छिपते क्यों आएं?'

सभी सैनिकों ने तीर-धनुष धारण किए और नायक के साथ बाहर आए।

नर्तकी के बजरे तक रुद्रयश पहुंच चुका था..... धीरे से वह ऊपर चढ़ा..... बजरे में बैठा एक नाविक बोला–'भाई! तुम कौन हो?'

इतने में ही पांच-चार साथी भी ऊपर चढ़ गए। उसी समय नायक ने ललकारते हुए पूछा–'कौन हो?'

उसी समय बजरे का रखवारा एक वृद्ध नाविक बजरे के खंड से बाहर निकला और पांच-सात व्यक्तियों को देख शीघ्र ही अंदर जाकर खंड का द्वार बंद कर दिया।

रुद्रयश ने साथियों से कहा–'साथियों तोड़ दो दरवाजा!'

परंतु उसी क्षण नायक ने कहा–'जैसे हो वैसे ही खड़े रह जाओ..... अन्यथा एक-एक बींधे जाओगे?'

रुद्रयश चौंका!

उसके साथी भी चौंके। किन्तु रुद्रयश ने लंबा विचार न कर दरवाजे पर जोर से एक लात मारी..... दूसरी मारी।

और सन-सन करते तीन बाण वहां आ लगे। जो निपुण सैनिक थे वे पांच व्यक्ति नीचे उतर कर बजरे की ओर आ रहे थे।

दरवाजा टूटे इससे पूर्व ही एक बाण रुद्रयश के दाएं हाथ में लगा····· दूसरे दो बाण दो व्यक्तियों के पैरों में लगे····· दोनों साथी चीखते-चिल्लाते वहीं बैठ गए····· किन्तु रुद्रयश पलायन करने के लिए नदी में छलांग भरने का निर्णय कर रहा था कि इतने में ही चार सैनिक वहां आ पहुंचे·····

नादान बालक····· न तो लड़ सके और न भाग सके, बेचारे····· तेरह तरुण पकड़े गए।

यह छोटा-सा संघर्ष पूरा हो उससे पूर्व ही नर्तकी के कुछेक लोग पांथशाला में आ पहुंचे।

यह संघर्ष देखकर रुद्रयश के बजरे वाला काना अपने बजरे के साथ वहां से छिटक गया। उसने वहां से पलायन करने में ही अपना भला देखा।

वह घटना कदंबघाट पर घटित हुई, इसलिए इन किशोर लुटेरों को वहां की हुकूमत के समक्ष पेश करना चाहिए, यह सोचा गया।

तेरह किशोरों को बांधकर पांथशाला में ले गए। आज के इस साहसिक कार्य का यह परिणाम होगा, यह कल्पना न रुद्रयश को थी और न उसके अन्य साथियों को। किन्तु रुद्रयश ने एक उपाय सोचा। सौभाग्यपुर के रक्षकों ने जब इनसे पूछताछ की तब रुद्रयश बोला—'नायकजी! हम सभी किशोर हैं····· हम लूटने या चोरी करने नहीं आए थे····· हमने देवी नीलमणी के नृत्य की बहुत प्रशंसा सुनी थी। अतः देवी को देखने आए थे·····'

'तुम सभी के पास तलवारें और लाठियां भी थीं।' नायक ने कहा।

'तलवार या लाठी रखना गुनाह नहीं है। यह हमने अपने बचाव के लिए रखा था। बाल-बुद्धि के कारण हमने यह साहस किया था। आप हमको छोड़ दें·····'

इन किशोरों को देखकर नीलमणी को दया आ गई, किन्तु नायक ने किसी को मुक्त नहीं किया····· देवी की भावना को सम्मान देते हुए सभी को भोजन कराया।

कुछ ही समय के पश्चात् कदंबगांव के दस रक्षक वहां आ पहुंचे।

सौभाग्यपुर के नायक ने तेरह डकैतों को उन्हें सौंपते हुए सारा घटनाचक्र बता दिया।

इस सारी प्रक्रिया में आधी रात बीत गई थी। नायक भी नगररक्षक के समक्ष हकीकत रखने के लिए वहीं रुक गया और वह तेरह की टोली के साथ गांव की ओर गया।

नीलमणी और रक्षकों के बजरे वाराणसी की ओर गतिमान हो गए।

सौभाग्यपुर का नायक घटनाक्रम की पूरी जानकारी देकर दूसरे दिन घाट पर आ पहुंचा । परन्तु किशोर लुटेरों को कारागृह में डाल दिया।

और नौवें दिन वहां के महाराजा ने तेरह किशोरों को कठोर चेतावनी देकर कारागृह से मुक्त कर दिया।

इधर महापंडितजी की चिंता का कोई आर-पार नहीं रहा। गत आठ दिनों में पंडितजी ने पुत्र की खोज करने अनेक व्यक्तियों को चारों दिशाओं में भेजा, परंतु पुत्र का कहीं पता नहीं लगा। पंडितजी अत्यंत व्यथित हो गए। और उन्हें पुत्र-विषयक अनेक बातें ज्ञात हुई।

अवंती नगरी से आए हुए अतिथि पंडित भी शास्त्रचर्चा कर विदा हो गए।

अन्त में तेरहवें दिन रुद्रयश घर आ पहुंचा। उसके हाथ का घाव भर गया था, परन्तु दुष्ट कार्य का निशान छोड़ गया था।

पुत्र को घर आया देखकर पिता का क्रोध जागृत हो गया। उन्होंने क्रोध को नियंत्रित कर कहा—'रुद्रयश! इन तेरह-चौदह दिनों तक तू कहां था?'

'पिताजी! सौभाग्यपुर गया था।'

'वहां क्यों?'

'वहां एक उत्सव था।'

'उत्सव? असत्य कथन! सौभाग्यपुर में तो वर्ष में एक ही बार श्रावणी पूर्णिमा का उत्सव होता है..... देख रुद्र! तेरी प्रवृत्ति ठीक नहीं है। तेरे हाथ में यह घाव क्या है?'

'मैं गिर पड़ा था.....'

'झूठी बात! गिरने पर ऐसा घाव और निशान नहीं होता। यह तो किसी शस्त्र का घाव है... परन्तु चाहे तू कहीं भी गया हो..... अब मैं तुझे घर में नहीं रखूंगा.....।'

'परंतु.....।'

'रुद्र! झूठे व्यक्ति को सहारा देना महान् पाप है। यह पाप कर मैं तेरे दोष को पोषण देना नहीं चाहता। तुझे ढूंढने में मैंने अनेक प्रयास किए..... मुझे कुछ समाचार मिले हैं..... माधव तेरे दो-तीन मित्रों से मिला था और तू किसी डकैती में पकड़ा गया है, यह ज्ञात हुआ। ऐसे पुत्रों से तो अपुत्र रहना इष्टकारी है तू समग्र कुल के लिए कलंक है..... माता-पिता अपनी संतान की दुष्ट प्रवृत्ति के साथ आंखमिचौनी नहीं कर सकते। जो मां-बाप आंखों के आगे परदा तान कर ममता के वशीभूत होकर सब कुछ सहन करते हैं वे अपने ही जीवन पर जबरदस्त अत्याचार करते हैं।'

रुद्रयश मौनभाव से खड़ा रहा।

महापंडित बोले—'रुद्र! उस दिन तूने भांग पीने की बात कही थी..... परन्तु

तू किस पानागार में जाता है वह मुझे ज्ञात हो गया है····· तेरे मित्र कैसे हैं, यह भी मैं जान चुका हूं····· तू जुआ खेलता है और चोरियां करता है, यह बात भी मेरे से गुप्त नहीं रह सकी। यह सब जानकर मैंने निश्चय किया है कि जिस दिन तू इन दुष्ट और कुल-कलंकी प्रवृत्तियों से मुक्त होकर पश्चात्ताप की अग्नि से विशुद्ध होकर आएगा उसी दिन मैं तेरा सत्कार करूंगा····· तब तक तू इस भवन की ओर आंख उठाकर भी मत देखना।'

रुद्रयश खड़ा ही रहा। वह बिना उत्तर दिए ही वहां से चलता बना·····।

महापंडित ने एक नि:श्वास डाला। अपनी स्वर्गस्थ पत्नी की स्मृति कर उन्होंने मन ही मन कहा—'देवी! मुझे क्षमा करना। मेरे लिए इसके सिवाय अन्य कोई मार्ग नहीं था। फिर भी मैं चाहता हूं कि रुद्र पश्चात्ताप की अग्नि में विशुद्ध बने।'

जब आधार खिसक जाता है तब ही मनुष्य को आधार का महत्त्व ज्ञात होता है। पिताजी के चरण छुए बिना, अपने दोषों की क्षमा-याचना किए बिना रुद्रयश अपने ही अहंभाव से बिना कुछ सामान लिये भवन से यों ही निकल गया। परन्तु जाए कहां? क्या अन्य नगरी में जाकर भाग्य की परीक्षा की जाए?

वह कोई निर्णय नहीं ले सका। वह द्यूतगृह में गया। उसने वहां सौ मुद्राएं संचित कर रखी थी। उनको लेकर इस नगरी का त्याग कर देना है, यह उसने सोचा था····· परन्तु द्यूतगृह में जाने के बाद उसका विचार बदल गया। उसने सोचा, एक बार जुआ खेलकर, और अधिक मुद्राएं प्राप्त कर फिर नगरी को छोड़ देना है।

परन्तु····· जुआ एक ज्वाला है। उसके द्वारा जला जा सकता है, धनी नहीं बना जा सकता। चार दिनों तक वह उसी द्यूतगृह में पड़ा रहा····· सौ स्वर्ण मुद्राओं में से एक शून्य कम हो गई····· अब उसके हाथ केवल दस स्वर्ण मुद्राएं रहीं। उसने अपने तीन साथियों के साथ एक और डकैती की योजना बनाई····· किन्तु किसी साथी ने सहयोग देना स्वीकार नहीं किया। और एक दिन वह प्रात:काल जल्दी उठकर मात्र दस स्वर्ण मुद्राओं के साथ साकेत जाने के लिए विदा हो गया।

स्वयं ब्राह्मण था, इसलिए मार्ग में भोजन तो मिल ही जाता। पांचवें दिन वह एक मध्यम नगरी में पहुंचा। यह नगरी उसे अच्छी लगी····· उसने सोचा, इस नगरी में छोटी-मोटी चोरी कर लूं तो मार्ग में अर्थ की कठिनाई नहीं रहेगी। यह सोचकर वह एक पांथशाला में रहा····· दो दिन तक उसने उस नगरी के मार्गों की अवगति की, आने-जाने के छोटे-बड़े रास्ते जान लिये और एक जौहरी की दुकान के ताले तोड़कर चोरी करने का निश्चय कर लिया।

तीसरे दिन वह एक साथी की खोज में एक पानागार में घुसा····· पानागार

में आज अनेक अपरिचित-से व्यक्ति आए हुए थे। रुद्रयश ने मदिरापान कर एक व्यक्ति से पूछा–

'आप कहां से आए हैं?'

'तुम क्यों पूछ रहे हो?'

'ऐसे ही पूछ लिया। मैं भी परदेशी हूं।' रुद्रयश ने कहा।

'तुम यहां क्या करते हो?'

'मुझे यहां आए मात्र तीन दिन हुए हैं..... मेरे योग्य कार्य की खोज कर रहा हूं..... आप यहां कब आए हैं?'

वह परदेशी रुद्रयश की ओर संदेह की दृष्टि से देखने लगा। सोचा, कहीं यह गुप्तचर तो नहीं है?

नहीं, नहीं, गुप्तचर तो नहीं लगता। यह सोचकर परदेशी ने पूछा–'तुम क्या जानते हो?'

'चोरी के अतिरिक्त मैं कोई काम-धंधा नहीं जानता।' रुद्रयश ने हंसते हुए कहा।

'तो क्या तुम हमारे सरदार के पास चलोगे? तुमको काम मिल जाएगा और यदि तुम गुप्तचर होगे तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा।'

'मैं आने के लिए तैयार हूं।' रुद्रयश बोला।

परदेशी जैसे लगने वाले सातों व्यक्ति रुद्रयश को साथ ले वहां से रवाना हो गए।

वे सभी एक वेश्या के घर ठहरे हुए थे। रुद्रयश ने देखा कि वे पन्द्रह आदमी हैं और उनका सरदार अत्यंत क्रूर आकृति वाला है।

रुद्रयश को साथ लाने वाले व्यक्तियों ने नमन कर कहा–'महाराज! यह एक तरुण कार्य की खोज में यहां आया है..... और इसे चोरी के अतिरिक्त कोई कार्य नहीं आता।'

'अच्छा, कहकर सरदार ने रुद्रयश की ओर गौर से देखा, फिर पूछा–'तेरा नाम क्या है?'

'रुद्रयश।'

'जाति क्या है?'

'ब्राह्मण हूं, परन्तु जाति से च्युत हो चुका हूं।'

'शाबाश! इतने समय में कितनी चोरियां की हैं?'

'छोटी-छोटी चोरियां अनेक की हैं, परन्तु उनसे दारिद्र्य नहीं मिटा। मैं वाराणसी नगरी में रहता था, परंतु अब वहां रह नहीं सकता।'

'क्यों?'

'तिरस्कार के कारण।'

'ओह! तू लगता तो है काम करने वाला, परन्तु तुझे पहले विश्वास उत्पन्न करना होगा।'

'कहिए.....'

'हम सभी आज ही इस नगरी में आए हैं। तू इस नगरी में चोरी कर हमें बता। फिर हम तुझे अपनी टोली में मिला लेंगे।'

'एक साथी की आवश्यकता होगी.....'

'तूने कौन-सा स्थल चुना है चोरी के लिए ?'

'मैंने एक जौहरी की दुकान को निशाना बनाया है।'

'बहुत साहसिक लगते हो। परन्तु देख लो, हमारे साथ रहने के बाद तुम अकेले नहीं रह सकोगे..... हम एक विशेष कार्य के लिए आए थे। अब हम अपने अड्डे की ओर जा रहे हैं। हमारा स्थान एक अभेद्य नगरी जैसा है..... वहां मेरे सभी साथी अपने-अपने परिवार के साथ रहते हैं। दुनिया की कोई शक्ति हमारे अड्डे को प्राप्त नहीं कर सकती। और, हमारे नियम बहुत कठोर हैं।'

'मैं उनकी प्रतिपालना करूंगा। बताएं.....'

'हमारी टोली में आने वाला वहां से छिटक नहीं सकता।'

'स्वीकार है.....'

'चोरी में जो धन प्राप्त हो वह सभी का होगा..... परन्तु कोई स्वतंत्र रूप से अपना धन नहीं रख सकता।'

'मंजूर है।.....'

'मदिरापान, मौज-मस्ती की कोई रोक-टोक नहीं है..... परन्तु कार्य के समय पूर्ण सावधान रहना होता है।'

'यह भी मेरी वृत्ति के अनुकूल है।'

'तुम कल हमारे साथ चलना..... ऐसे गांव में चोरी करने की आवश्यकता नहीं है।' सरदार बोला।

'तो फिर मैं विश्वास कैसे दिला पाऊंगा?'

सरदार विचार करने लगा। कुछ क्षणों बाद बोला—'आज मध्य रात्रि के बाद तुम मेरे चार साथियों को साथ लेकर जाना और अपनी शक्ति का परिचय देना। कल तो हम यहां से रवाना हो जाएंगे।'

'जैसी आपकी आज्ञा.....' रुद्रयश तैयार था।

और कुछ समय पश्चात् सरदार के चार साथियों के साथ रुद्रयश चोरी करने निकल पड़ा।

सभी बाजार बंद हो गए थे। राज्य के कुछ सैनिक पहरा दे रहे थे। वे बाजारों में चक्कर लगाते और इधर-उधर झांककर चले जाते।

रुद्रयश अपने साथियों के साथ उस जौहरी की दुकान पर पहुंचा। उसने

चारों ओर देखा और चपलता से दुकान के दोनों ताले एक लोहे की कील से खोल दिए। फिर वह भीतर घुस गया। साथ वाले चारों साथी अलग-अलग स्थानों में छुप गए।

रुद्रयश दुकान में प्रविष्ट हुआ। उसने दरवाजा बंद कर दिया..... मात्र अर्धघटिका में वह स्वर्णमुद्राओं से भरी एक थैली लेकर बाहर आ गया। दरवाजा बंद कर तालों को पूर्ववत् बंद कर, थैली को साथ ले पास वाली गली में चला गया।

इस गली में एक साथी छिपा बैठा था।

उसी समय राजा का एक अश्वारोही रक्षक राजमार्ग से निकला।

अश्वारोही के आगे गुजरने के बाद तीनों साथी वहीं एकत्रित हुए।

रुद्रयश सही सलामत अपने चारों साथियों के साथ अपने सरदार के पास आ गया।

सरदार तरुण का साहस देखकर अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने रुद्रयश को अपनी टोली में रख लिया।

परिताप और पश्चात्ताप की अग्नि से विशुद्ध होने की पिता की बात हवा में उड़ गई। बेचारे रुद्रयश को इसकी कल्पना भी कैसे हो?

उगते यौवन को उचित संरक्षण अपेक्षित होता है।..... जो माता-पिता इस तथ्य की उपेक्षा करते हैं, उन्हें अन्ततः पछताना पड़ता है।

सरदार ने जब रुद्रयश से पूछा कि तुमने चोरी कैसे की, तब रुद्रयश बोला–'सरदारजी! मैं ताला खोलने की कला जानता हूं..... मात्र दो शलाकाओं से मैं सभी प्रकार के ताले खोल सकता हूं और पुनः बंद कर सकता हूं..... मैं ताले खोलकर भीतर गया..... दुकान में अनेक थैलियां भरी पड़ी थीं..... मेरे से अधिक भार तो उठाया नहीं जा सकता..... जो साथी मेरे साथ आए थे, वे आपकी आज्ञा से बाहर ही रहकर मुझे देखते रहे। इसलिए मैं एक थैली उठाकर बाहर निकल गया और तालों को यथावत् बंद कर दिए।'

रुद्रयश! मुझे तो तुम्हारी परीक्षा करनी थी..... चोरी नहीं करनी है..... अन्यथा हम उसका सारा धन उठा लाते..... तुम इस अड्डे में मस्ताई से रहो।

और सूर्योदय होते-होते रुद्रयश टोली के साथ रवाना हो गया।

८. कन्यारत्न

नदी, नारी, कथा, पतंग आदि का वैविध्य आकर्षक होने पर भी विचित्र होता है। जैसे कोई नदी वक्र होती है, कोई सीधी होती है। कोई छिछली होती है, तो कोई अन्तःसलिला। कोई चंचल होती है तो कोई गंभीर। किसी का प्रवाह तीव्र वेग वाला होता है तो कोई शांत..... ऐसा ही वैविध्य होता है नारी का, वार्ता

का और पतंग का। कुछेक वार्ताएं एकरूप होती हैं, कुछ वक्र और कुछ अत्यंत गूढ़ होती हैं। यह कथा भी कुछ ऐसी ही है..... जिस प्रकार प्रवाह में बहता हुआ तिनका आगे से आगे बहता जाता है परन्तु प्रतिस्रोत से वह मूल स्थान की ओर भी आने लगता है, इसी प्रकार वार्ता को आगे ले जाकर भी पुनः पीछे मोड़ना पड़ता है।

हमें ज्ञात हो चुका है कि पारधी सुदंत दो प्रेमी पक्षियों की चिंता में पश्चात्ताप की अग्नि में जीवित ही जल गया..... उसके प्रायश्चित्त को वर्धापित करने वाला भी तब कोई नहीं था..... हां, प्रकृति स्वयं तो थी ही.....अब इस कथा की तरंगिणी वत्स देश की राजधानी कौशांबी नगरी का स्पर्श कर रही है।

कौशांबी नगरी!

वत्सदेश की लज्जावती वधूसदृश लज्जालु और रसमयी राजधानी! जैसे कोई रूपवती नवयौवना देखने वाले को चौंका देती है, वैसे ही यह आकर्षक और अलबेली नगरी प्रत्येक प्रवासी को विस्मयमूढ़ बना देती थी। यह नगरी अत्यंत सुंदर और मनोहारी होने पर भी इसकी आत्मा तेजस्वी थी..... महाराज उदयन और उनकी प्रियतमा वासवदत्ता अत्यधिक लोकप्रिय और जागृत थे। जिस राज्य के संचालक सत्ता के मद में उन्मत हो जाते हैं, उस राज्य की जनता कभी सुखी नहीं रह सकती।

राजा उदयन जानता था कि मयूर की शोभा उसके प्रवर पंख-पुंज से है..... राजा की शोभा जनता के प्रेम और सद्भाव से है। राजा यह भी जानता था कि प्रजा का प्रेम प्राप्त करने के लिए राज्यवर्ग को उदार और कर्त्तव्यपरायण होना चाहिए।

वहां के नगरसेठ ऋषभसेन महाराजा उदयन के परम मित्र थे। दोनों मित्र दिन में एक बार अवश्य मिलते और यदि संयोगवश कभी मिलना नहीं होता तो दोनों के मन में एक खटक रह जाती।

राजा उदयन महान् संगीतप्रिय था। दिव्य महार्घ वीणा को बजाने वाला उदयन के अतिरिक्त कोई था नहीं, क्योंकि महार्घ वीणा देवी सरस्वती की प्रसादी मानी जाती थी और इस वीणा के साधक अल्प मात्रा में ही थे। मगधदेश में बिंबिसार, वैशाली में आम्रपाली और वत्सदेश में उदयन इस वीणा के साधक माने जाते थे।

अन्यान्य वीणाओं को बजाने वाले साधक सर्वत्र थे, परन्तु महार्घ वीणा किन्नरजाति का श्रेष्ठ वाद्य था..... देवी सरस्वती द्वारा निष्पादित यह वाद्य इतना जटिल और पूर्ण था कि सरस्वती की आराधना के बिना इसमें सिद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती थी।

नगरसेठ ऋषभसेन वाणिज्यकुशल, प्रामाणिक और प्रतिष्ठित व्यापारी था।

गत कुछेक पीढ़ियों से उसका परिवार नगरसेठ की पदवी भोग रहा था और वह उत्तरोत्तर शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह वृद्धिंगत होता हुआ विकसित हो रहा था।

एक व्यापारी और दूसरा राजा। दोनों की मैत्री बाल्यकाल से आज प्रौढ़ावस्था तक एक धार चली आ रही थी।

ऋषभसेन नगरसेठ की संपदा बड़े-बड़े राजाओं को भी लज्जित करने वाली थी।

इसका भवन राजप्रासाद से भी अधिक भव्य और रमणीय था। जब वह प्रातः पूजा के लिए घर से रवाना होता तब अपने रथ में मोहरों से भरा चरु लेकर निकलता और रास्ते में मुट्ठी भर-भर कर रास्ते में उछालता जाता। घर आकर जब वह दातून करने प्रांगण में बैठता तब जो भी याचक आता वह तृप्त होकर ही जाता। इतना ही नहीं, कौशांबी नगरी के लोगों के लिए भी नगरसेठ आश्रयरूप था। किसी की आर्थिक विपत्ति आ पड़ती तो नगरसेठ का धन-भंडार खुला था। वह सहयोग करता, परन्तु तीसरे व्यक्ति को ज्ञात तक नहीं होता कि अमुक ने नगरसेठ से मदद पाई है। नगरसेठ सजग था कि दायें हाथ से दिया जाने वाला सहयोग बायें हाथ को भी ज्ञात न होने पाए। संक्षेप में नगरसेठ अपार संपत्ति का स्वामी था, किन्तु धन से लिपटे रहने में वह अन्याय, अधर्म और अकल्याण मानता था।

भवन विशाल था। उसकी तीन मंजिलों में छत्तीस कमरे थे। शताधिक दास-दासी थे। दस गजराज, चालीस अश्व और उसके गोकुल में आठ सौ से अधिक गाय-बैल आदि थे। दूध और घी की नदियां बहती थीं। ऋषभसेन सभी प्रकार से सुखी था। उनकी पत्नी का नाम सुनंदा था। उसने आठ पुत्रों का प्रसव किया था। भवन उन बालकों के कलरव से गूंजता रहता था। सुनंदा चालीस वर्ष की थी और नगरसेठ पैंतालीस वर्ष का था। देखने वाले पारखी लोग भी सुनंदा को तीस वर्ष की ही मानते थे। वह स्वस्थ, सुंदर और सुडौल थी। आठ-आठ प्रसूति करने के बाद भी उसका रूप, यौवन और आरोग्य अखंड था।

वह सभी प्रकार से सुखी थी। यश, कीर्त्ति, उत्तम स्वभाव आदि सब कुछ था..... फिर भी छह मास पूर्व जब उसने आठवें पुत्र को जन्म दिया, तब देवी सुनंदा सहजभाव से उदासीन बनी थी। आठ पुत्रों के जन्म के पश्चात् उसके मन में एक आशा उभरी थी कि अब एक पुत्री आवश्यक है। माता का आश्रय जीवित कन्या होती है..... पिता अपने पुत्रों से जीवित रहता है।

उत्तम माता-पिता की गोद में क्रीड़ा करने वाले बालक भी उत्तम होते हैं..... कोई कभी दुष्टात्मा भी उत्तम माता-पिता के घर जन्म ले लेता है..... यह आपवादिक है, सर्व सामान्य बात नहीं।

रात्रि का प्रथम प्रहर पूरा हुआ। सुनंदा अपने छहों बालकों को सुलाकर,

सबसे छोटे दो बालकों को धाय माता को सौंप कर प्रतिक्रमण करने बैठ गई। सेठ ऋषभसेन आज जल्दी ब्यालू कर उपाश्रय में गए थे। वहां से वे अपनी दुकान पर अथवा राजभवन में जाते।

सुनंदा प्रतिक्रमण संपन्न कर उठी। उसने सोचा, सेठजी अभी तक नहीं आए हैं। संभव है राजभवन में विलंब हो गया हो।

यह सोचकर वह सभी पुत्रों की सार-संभाल कर शयनगृह में गई और उसी समय प्रांगण में रथ की ध्वनि सुनाई दी।

कुछ ही क्षणों के पश्चात् नगरसेठ ऋषभसेन भवन में आ पहुंचे। सुनंदा शयनगृह के द्वारमुख पर खड़ी थी। सेठ को देखते ही, उसके नयन प्रसन्नता से भर गए।

तत्काल दो दास दौड़े-दौड़े आए और सेठजी के वस्त्र बदलाये। सेठ ने पत्नी के सामने देखते हुए कहा—'प्रिये! आज कुछ विलंब हो गया। मैं दुकान से सीधा राजभवन में गया था, क्योंकि राजा का महाप्रतिहार मुझे बुलाने दुकान पर आ गया था। महाराजा के समक्ष विशेष चर्चा चली थी और आज तो महादेवी भी चर्चा में बैठी थी।'

'किस बात की चर्चा थी?'

'संगीत की।'·····फिर महाराज ने महादेवी को प्रसन्न करने महार्घ वीणा बजाई·····।

'आपको तो·····।'

'राग को मैं नहीं समझता····· परन्तु महाराजा की वीणा से मिलन की अभीप्सा प्रवाहित हो रही थी और महादेवी के मन का विषाद पलभर में धुल गया था और मेरे मन पर अजब प्रभाव पड़ा था।'

'क्या?'

दोनों दास खंड से बाहर निकल गए।

ऋषभसेन मधुर हास्य बिखेरते हुए बोला—'प्रौढ़ावस्था में मिलनेच्छा प्रबल होती है····· मेरा मन हुआ कि मैं उड़कर तेरे पास आ जाऊं····· वास्तव में संगीत औषधियों से भी महान् औषधि है····· महाराजा तो इसके साधक हैं····· तुझे याद होगा कि तीन वर्ष पूर्व महाराजा ने एक उन्मत्त हाथी को इस संगीत के माध्यम से वश में कर लिया था।'

'मुझे याद है... और महाराजा चंडप्रद्योत की हस्ती सेना को·····' 'पागल बनाकर छिन्न-भिन्न कर डाला था····· अनेक वर्ष बीत गए····· किन्तु·····'

'क्यों बात कहते-कहते रुक गए?'

'ब्यालू कर जब मैं बाहर निकला था तब तेरे चेहरे पर मैंने उदासीनता की रेखाएं देखी थीं····· ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं हुआ····· फिर भी·····'

'नहीं स्वामिन्! कभी-कभी मन में एक प्रश्न उभरता है और मन उदास हो जाता है।'

'तो फिर तू मुझे क्यों नहीं बताती?'

'आपसे क्या कहूं? मनुष्य को संतोष नहीं होता····· स्त्री का मन तो और अधिक दुर्बल हो जाता है।' सुनंदा ने कहा।

'किस बात में?'

'बात आपके वश की नहीं है। फिर मैं आपसे क्या कहूं?'

'फिर भी।' कहकर सेठजी पत्नी का हाथ पकड़कर पलंग पर बैठ गए।

'भवन में आठ-आठ बालक क्रीड़ा करते हैं····· यह देखकर अपार हर्ष होता है····· परन्तु·····'

'क्या कोई ईर्ष्या करता है?'

'नहीं, परंतु पिता की लता होते हैं पुत्र और माता की लता होती है कन्या····· यदि एक कन्या होती तो अपने सुख के शिखर पर रत्न का कलश चढ़ जाता·····'

'ओह·····।'

तत्काल सुनंदा द्वार बंद करने उस ओर चली गई। जब वह पलंग के पास आई तब सेठ ने कहा–'प्रिये! यह प्रश्न तो मुझे भी खटकता है····· आज ही एक निमित्तक से मेरी इस विषय में चर्चा चली थी और उसने एक प्रयोग भी बताया है।'

पत्नी आतुर नयनों से पति के सामने देखने लगी।

नगरसेठ बोला–'निमित्तक ने जो प्रयोग बताया है वह बहुत प्रभावशाली है। गंगा देवी की आराधना से पुत्र की प्राप्ति होती है और यमुना देवी की आराधना से पुत्री की प्राप्ति होती है। तीन मासपर्यन्त पति-पत्नी को आचाम्ल तप करना पड़ता है। प्रतिदिन यमुना देवी की मूर्ति के समक्ष एक माला फेरनी होती है। यमुना की आराधना का मंत्र भी सरल है और नब्बे दिनों तक मन, वचन-काया से संयम का पालन करना होता है। निमित्तक ने बताया कि नब्बे दिन की रात्रि में यमुना नदी की अधिष्ठात्री देवी यमुना स्वप्न में आकर अवश्य ही इच्छा पूरी करती है।'

'प्रयोग उत्तम है। कब से प्रारंभ करना है?'

'प्रातः ज्योतिषी से पूछकर शुभ मुहूर्त में इस प्रयोग को प्रारंभ करेंगे।' सेठ ने कहा।

सुनंदा को यह प्रयोग अच्छा लगा।

सातवें दिन सेठ-सेठानी ने यमुना की आराधना प्रारंभ कर दी। यमुना की आराधना!

एक समय था जब नदियां भी देवत्व का रूप धारण कर आराधकों की मनोभावना पूर्ण करती थीं। जहां तीव्र भावना, श्रद्धा और समर्पण होता है, पवित्रता होती है, वहां आत्मसिद्धि के आने में विलंब नहीं होता, तो फिर भौतिकसिद्धि की तो बात ही क्या है?

बातों ही बातों में नवासी दिन बीत गए।

आज तीसरे महीने का अंतिम दिन था..... नब्बेवां दिन था।

दोनों की आराधना विधिवत् और विशुद्ध थी..... दोनों एक ही खंड में जमीन पर चटाई बिछाकर दूर-दूर सो जाते..... आचाम्ल तप चल ही रहा था और उससे मनोविकार स्वतः शान्त हो गया था और नींद भी स्वस्थ और गहरी आने लगी थी।

इसके साथ दोनों की दैनिक आराधना, पूजा-पाठ, प्रतिक्रमण आदि भी यथावत् चलते थे।

आज आराधना की अंतिम रात्रि थी..... नब्बेवीं रात्रि थी..... रात्रि का चौथा प्रहर प्रांरभ होते ही सुनंदा को एक सुखद स्वप्न आया.....।

उसने देखा, वह एक रमणीय उपवन में खड़ी है..... स्वयं की सखियां अनेक कुंजों में छिप गई हैं, इसलिए वह उन्हें चारों ओर खोज रही है..... इतने में ही वह उत्कर्ण हुई..... उसने तरंगमालाओं की गंभीर, मधुर आवाज सुनी..... अरे, इस उपवन में ऐसी ध्वनि कहां से.....।

तत्काल उसकी घ्राणेन्द्रिय चौंकी..... मलयाचल के पवन को स्पर्शवाली अति शीतल, मधुर और भीनी सौरभ कहां से आई..... अरे! यह क्या? इस उपवन के आसपास कोई जलाशय तो दृष्टिगत नहीं होता तो फिर यह कैसे?

इतने में ही यमुना नदी का शांत, धीर, गंभीर और श्यामल प्रवाह दिखाई दिया..... सुनंदा चौंकी..... तरंगलोला यमुना पर एक सहस्रदल वाला कमल तैर रहा था..... उस कमल पर चार भुजा वाली एक तेजोदीप्त देवी खड़ी थी..... देवी के गले में रक्तकमल की माला थी..... उसके शरीर पर जो दिव्य अलंकार थे उनकी जगमगाहट सूर्य के प्रकाश को भी फीका कर रही थी।..... सुनंदा आश्चर्यभरे नयनों से देवी को देख रही थी..... उसने नमन किया..... देवी ने सुनंदा को आशीर्वाद देते हुए कहा–'सुनंदा! तेरी और तेरे पति की आराधना से मैं प्रसन्न हूं..... कल प्रातः तीन घटिका के पश्चात् व्रत की पूर्णाहुति करना.....तेरी इच्छा पूरी होगी।'

कितनी मधुर वाणी!

देवी अदृश्य हो गई..... न उपवन था और न थी तरंगवती यमुना। सुनंदा चटाई से उठी..... मन में नमस्कार महामंत्र का स्मरण किया..... प्रातःकाल होने वाला था। उसने पति को जगाया और उन्हें स्वप्न की बात बताई। ऋषभसेन

स्वप्न का वृत्तान्त सुनकर अत्यंत हर्षित हुआ।

दोनों उठकर उपासनागृह में गए।

दोनों ने सामायिक अनुष्ठान किया।

व्रत की निर्विघ्न संपन्नता पर दोनों प्रसन्न थे। तपस्या का पारणा किया। पन्द्रह दिन बीत गए।

बीसवें दिन सुनंदा को यह आभास हुआ कि उसने गर्भ धारण किया है..... माता की कल्पना सत्य होने लगी..... गर्भ बढ़ने लगा।

पांचवें महीने के पश्चात् तो सुनंदा के लावण्य की भी वृद्धि हुई..... उसके वदन और नयन पर नूतन प्रकाश फैलने लगा।

आठ पुत्रों की माता को यदि कोई देखता तो वह यही कहता कि सेठानी प्रथम बार सगर्भा हुई है।

विचार स्थिर होने लगे।

दोहद भी सात्विक भाव वाले हो गए।

और नौवें मास के सातवें दिन सुनंदा ने सुखपूर्वक प्रसव किया..... तेजपुंज जैसा एक कन्यारत्न उसकी गोद में आया।

उस समय सेठ दुकान पर थे। उन्हें कन्यारत्न की प्राप्ति की बधाई दी गई..... सेठ ने तत्काल अन्न-वस्त्र आदि के दान की घोषणा की।

महाराजा उदयन को यह ज्ञात होते ही वे अपनी प्रियतमा देवी वासवदत्ता के साथ नगरसेठ के भवन पर आ पहुंचे।

कन्या इतनी रूपवती थी कि ऐसा रूप देवलोक में भी है या नहीं, यह प्रश्न उभरता।

वृद्ध स्त्रियों ने अनेक टूंणे किए, जिससे कि कन्या को नजर न लग जाए।

एक शुभ दिन कन्या का नामकरण उत्सव रखा।

देवी सुनंदा के स्वप्न में देवी यमुना को तरंगलोला के रूप में देखा था, इसलिए निमित्तकों ने कन्या का नाम 'तरंगलोला' रखा।

यह नाम सबको पसंद आ गया।

तरंगलोला! तरंगवती! यमुना की लहर जैसी कन्या!

प्रतीक्षा की घड़ियां लंबी होती हैं, दिन बड़े प्रतीत होने लगते हैं। दुःख की रातें शतयामा बन जाती हैं और सुख की रातें पलभर में बीत जाती हैं।

दिवस गिनते-गिनते मास बीत गए। महीनों की गणना करते-करते वर्ष बीत गए।

तरंगलोला पांच वर्ष की हो गई। उसे कलाचार्य की पाठशाला में भेजा.....।

तरंगलोला अपने आठ भाइयों के बीच अकेली बहिन थी..... वह दिव्य कमलिनी के समान दीख रही थी.....।

९. सप्तपर्ण पुष्प

उस कालखंड में स्वस्थ, उदार, नीतिमान् और प्रामाणिक बनाने वाले ज्ञानाभ्यास को महत्त्व दिया जाता था और उसे जीवन का आवश्यक अंग माना जाता था। मानव-मन की जड़ता को मिटाने के लिए ज्ञान-चेतना ही एकमात्र साधन थी। इसलिए राष्ट्र का प्रत्येक वर्ग, फिर चाहे वह ब्राह्मण वर्ग हो या शूद्र वर्ग–अपने जीवन को उपयोगी बनाने के लिए तदनुकूल अभ्यास करता था।

ब्राह्मण सर्वशास्त्रों में पारंगत होते थे।

क्षत्रियवर्ग राजनीति, संगीत, कला और शस्त्र-संचालन तथा उसकी सहायक विद्याओं में निष्णात होते।

वैश्यवर्ग कृषि, गो-पालन, वाणिज्य, अर्थशास्त्र आदि का अभ्यास करते।

शूद्र भी कृषि, गो-पालन, सदाचार, पाकशास्त्र आदि का अभ्यास करते।

चारों वर्ण केवल कर्त्तव्य-क्षेत्र से पहचाने जाते..... चारों वर्णों के मध्य उच्च-नीच का प्रभेद नहीं था।

तरंगलोला जब कलाचार्य की पाठशाला में प्रविष्ट हुई तब उसी नगरी के सार्थवाह का नौ वर्षीय पुत्र पद्मदेव भी वहीं अभ्यास करता था और शताधिक विद्यार्थियों में श्रेष्ठ और गुणवान् माना जाता था।

पाठशाला में गरीब और धनवान् विद्यार्थियों के लिए पृथक् बैठने या शिक्षा पाने की व्यवस्था नहीं थी। गुरु सबको समदृष्टि से देखते और सभी को समान रूप से ज्ञान का अभ्यास कराते। उसमें पक्षपात नहीं रहता। विद्यादान को महत्त्वपूर्ण माना जाता था और जो विद्यादान देता वह महान् पुण्य का उपार्जन करता है, यह दृष्टि स्पष्ट थी।

जब तरंगलोला सात वर्ष की हुई तब जीवन में एक विक्षेप उभरा। वह जल-तरंगों को देखकर, सरोवर या तालाब को देखकर चौंक उठती। वह क्यों चौंकती है, इसका कारण किसी को ज्ञात नहीं हो सका..... स्वयं तो केवल सात वर्ष की बालिका थी, अतः कुछ कारण बता नहीं पा रही थी..... परन्तु जब वर्षा होती और किसी स्थल पर जल एकत्रित हो जाता, उसमें तरंगें उठतीं तो तरंगलोला उसको स्थिरदृष्टि से देखती रहती और चौंक कर गंभीर बन जाती..... किसी विस्मृति के बादल की ओट में छिप जाती।

पुत्री की इस स्थिति से चिन्तित होकर माता-पिता ने उसे पाठशाला भेजना बंद कर दिया। परन्तु घर पर अभ्यास चालू रखा..... योग्य कलाचार्य घर पर आकर अभ्यास कराने लगे।

पद्मदेव और तरंगलोला–दोनों एक-दूसरे से परिचित हों, उससे पूर्व ही यह स्थिति बन गई।

तीन वर्ष और बीत गए। अभ्यास सुचारुरूप से चल रहा था। पद्मदेव में कवित्व शक्ति स्वाभाविक थी और तरंगलोला को चित्रकला का शौक था।

तरंगलोला जब चौदह वर्ष की हुई, तब उसका ज्ञानाभ्यास पूरा हुआ····· यद्यपि ज्ञानाराधना जीवनभर करने पर भी पूरी नहीं होती, फिर भी आवश्यक ज्ञान की आराधना हो जाने पर माता-पिता निश्चिन्त हो जाते हैं।

तरंगलोला को बाल्यकाल से ही चित्रकला का शौक था और अभ्यासकाल में वह साधना के रूप में विकसित हुआ। अब वह यौवनावस्था को प्राप्त हो गई थी····· वह बालिका से तरुणी बन गई थी····· उसका रूप बेजोड़, अपूर्व और अनिंद्य। कवि अनिंद्य सुंदरी का वर्णन करते-करते पागल हो जाते हैं और उस वर्णन को पढ़ने वाले मुग्ध हो जाते हैं। परन्तु तरंगलोला को देखने के पश्चात् कवियों के सभी वर्णन शुष्क और फीके हो जाते थे।

जब कभी तरंगलोला अपने भवन के विशाल उपवन में सखियों के साथ भ्रमण करने निकलती तब उपवन के पुष्पखंड में पुष्पों पर मंडराने वाले भ्रमर भान भूलकर तरंगलोला के वदन कमल पर मंडराने लग जाते। फूल की कोमलता मर्यादित समय तक ही रहती है····· परन्तु तरंगलोला के अधर-वदन की कोमलता तो मानो चिरकाल तक रहने योग्य निर्मित हो, ऐसा प्रतीत होता था।

तरंगलोला की सखियों में सारसिका नाम की एक समवयस्क सखी उसे अतिप्रिय और विश्वस्त थी। तरंगलोला अपने मन की बात सारसिका से नहीं छिपाती थी और सारसिका भी अपने मन की बात को तरंगलोला से गुप्त नहीं रखती थी। सारसिका ने अभी-अभी सोलहवें वर्ष में प्रवेश किया था और तरंगलोला कुछेक महीनों पश्चात् पन्द्रह वर्ष की होने वाली थी।

एक दिन दोनों सखियां सायंकाल के समय प्रतिदिन की भांति उपवन में गई।

नगरसेठ का उपवन रमणीय, विशाल और राजा के उपवन की प्रतिस्पर्द्धा करने वाला था। उपवन की सुरक्षा के लिए अनेक माली थे। उपवन के मध्य भाग में एक मनोहर लतामंडप था। इस विशाल लतामंडप में कांच के आसन यत्र-तत्र बने हुए थे और दो व्यक्ति बैठ सकें ऐसे स्वर्ण की सांकलों से बंधे झूले थे।

इस लतामंडप में दोनों सखियां आईं और इधर-उधर घूमकर एक झूले पर बैठ गईं और बतियाने लगीं।

जैसे पति-पत्नी की बातों का अन्त नहीं आता, दो अनुरक्त प्राणियों की बातें अनन्त होती हैं, वैसे ही दो मित्रों की बातें भी अनन्त होती हैं। बहुत बार यह प्रश्न उभरता है कि इतनी बातें कहां से उत्पन्न होती हैं? परन्तु आज तक कोई इसका उत्तर नहीं दे पाया।

जैसे मन अनन्त है, वैसे ही बातें, विचार और उमंगें भी अनन्त होती हैं।

दोनों सखियां झूले पर बैठ गई..... सारसिका ने मंद गति से झूला चलाया.....।

मन चिरयुवा रहता है। उसके वय की कोई मर्यादा नहीं होती..... मन सदा चंचल बना रहता है। जब तक मन पर विजय प्राप्त नहीं की जाती तब तक प्राणी संसार में भटकता रहता है..... यौवन का प्रारंभकाल भी बहुत चंचल होता है..... यौवन में जिज्ञासाएं प्रचुररूप में उभरती हैं..... उसमें तृषा और तृप्ति का कोई भान न होने पर भी मन में अजीब अकुलाहट अन्तःकरण में क्रीड़ा करने लग जाती है।

तरंगलोला ने सारसिका से पूछा—'मेरा प्रश्न तो याद है न?'

'प्रश्न तो याद है, परन्तु उसका उत्तर क्या दूं? सोलहवां वर्ष चल रहा है..... माता-पिता उतावल करें, यह स्वाभाविक है..... और.....'

'तेरा मन भी..... कहते-कहते तरंगलोला हंस पड़ी।'

सारसिका ने तत्काल कहा—'मेरे मन को कुछ क्षणों के लिए भूल जा..... तेरे मन का विचार कर..... आने वाले कल में तेरा मन भी मीठी अकुलाहट में फंस जाए।'

'मेरे प्रश्न का उत्तर?'

'मैं कैसे दूं? मां की इच्छा है कि गांव में ही योग्य वर की खोज की जाए..... पिताजी इससे विरुद्ध हैं..... यदि मां की जीत होगी तो हमारा वियोग नहीं होगा और पिताजी जीतेंगे तो.....'

बीच में ही तरंगलोला बोल पड़ी—'सखी! तेरे बिना मैं एक पल भी जीवित नहीं रह सकूंगी... क्या तू अपने पिताजी को समझा नहीं सकती?'

'पगली! माता-पिता के विचारों के बीच मैं क्यों जाऊं? आज्ञाकारी बालक माता-पिता की आज्ञा को आशीर्वाद मानते हैं और इसी में उनका मंगल है..... परन्तु तेरे जैसा ही प्रश्न मेरा भी है।'

तरंगलोला ने प्रश्नभरी दृष्टि से सारसिका की ओर देखा।

सारसिका बोली-'तेरी सगाई यदि अन्य नगरी में होगी तो?'

'नहीं होगी.....'

'तू ऐसा कैसे कहती है? कल ही तूने कहा था कि पिताजी राजगृह की ओर ढूंढ रहे हैं.....'

'पिताजी ने प्रयत्न प्रारंभ किया है, परन्तु.....'

'परन्तु क्या.....?'

'तेरी मां की भांति ही मेरी मां भी इसी नगरी का आग्रह रखती है..... अतः मैं निश्चित रूप से कह सकती हूं कि पिताजी मेरी मां के आग्रह को टाल नहीं सकते..... परन्तु क्या कहूं..... न जाने मेरा मन विवाह करने के लिए

उत्सुक ही नहीं हो रहा है।'

'तू तो पागल है। यौवन को यौवन का साथ ही अच्छा लगता है। नर और नारी एक-दूसरे के पूरक हैं। जैसे टूटे हुए पंख वाला पक्षी उड़ नहीं सकता, इसी प्रकार अकेला पुरुष या अकेली स्त्री उड़ नहीं सकती। तेरे चारों भाई विवाहित हो चुके हैं। कैसे शोभित हो रहे हैं! चारों भाभियों के मन में मिलन की कितनी अधीरता रहती है! यदि संसार में रहना हो तो दो होकर ही रहना होगा। तुझे विवाह करने की इच्छा क्यों नहीं होती?'

'तू जो कुछ कह रही है, मैं जानती हूं..... परन्तु विवाह की बात करते ही मन जड़ हो जाता है..... और उस समय मेरी जो अवस्था होती है, उसे मैं स्वयं नहीं समझ पाती।'

सारसिका दो क्षण तक तरंगलोला की ओर घूरती रही, फिर बोली—'सखी! मुझे प्रतीत होता है कि तूने किसी का दु:खमय विवाहित जीवन देखा है, जाना है, अत: तेरे मन पर उस दु:ख का प्रतिबिम्ब अंकित हो गया है। विवाह केवल नर और नारी का मिलन सुख मात्र नहीं है, वह तो मानववंश की बेल को अमर रखने वाला पवित्र कर्त्तव्य है।'

तरंगलोला बोली—'सारसिका! किसी के दु:खमय विवाहित जीवन की मुझे स्मृति भी नहीं है और मन भी भयाक्रान्त नहीं है। मैं मानती हूं कि माता-पिता उनके बालकों में ही जीवित रहते हैं। विवाह केवल नर-नारी की नहीं..... पुरुष और प्रकृति के कर्मयोग का तप है..... संसार में रहने वाले इस तप से ही सिद्धि प्राप्त करते हैं..... फिर भी.....।'

सारसिका ने तत्काल तरंगलोला का हाथ पकड़ते हुए कहा—'यह एक भ्रमना है..... यदि माता-पिता को तेरी इस ऊलजलूल बातों का पता लगेगा तो वे कितने दु:खी होंगे..... इस उपवन का जलाशय कितना सुंदर था? यदा-कदा भवन की स्त्रियां जलाशय में जलक्रीड़ा का आनन्द उठातीं..... परन्तु जलाशय को देखते ही तू चौंक जाती, अस्वस्थ हो जाती, इसलिए बापू ने पूरे जलाशय को ही सुखा दिया।'

तरंगलोला झूले पर खड़ी होकर बोली—'ओह! अंधकार छाने लगा है। चल, भवन में चलें..... मां तो प्रतीक्षा ही करती होगी।'

दोनों सखियां लतामंडप से बाहर निकलकर भवन की ओर चली, तब दो परिचारिकाएं आ पहुंचीं और बोलीं—'बहिनश्री! सेठानीजी आपको कब से याद कर रही हैं।'

'मैं आ रही हूं।' कहकर तरंगलोला सारसिका के हाथ से हाथ मिलाकर चलने लगी।

यौवन की उद्‌ग्रता।

अभी तो केवल उषारानी ने ही अपना पल्ला बिछाया था..... यह तो अरुण के आगमन की सूचना है..... यौवन की उदग्रता बदरूप हो सकती है..... तारुण्य की तेजस्वी रेखाएं अंग-प्रत्यंग में उभर आती हैं और मन कल्पना की पांखों से सतत उड़ता रहता है!

मानव मात्र की यौवन की उदग्रता ऐसी ही उष्मा भरी होती है..... यह उष्मा जलाती नहीं, चंचल बनाती है।

रात्रि का समय प्रारंभ हो चुका था। सारसिका को एक रथ में रवाना कर तरंगलोला मां के पास गई और प्रणाम कर बोली–'मां! आज प्रतिक्रमण.....।'

'अरे, आकाश की ओर तो देख, प्रतिक्रमण का समय तो कभी का बीत चुका है बेटी!' कहकर मां ने उसे पास में बिठाया और कन्या की ओर घूरती हुई नि:श्वास डाला। यह सुनकर तरंगलोला बोली–'मां! क्या हुआ?'

'कुछ नहीं.....'

'तो फिर नि:श्वास क्यों मां?'

'तुझे देखकर.....'

'मुझे तो तुम रोज देखती हो..... मां! मुझे बताओ, नि:श्वास क्यों डाला? नहीं तो मुझे सारी रात नींद नहीं आएगी।'

'बात में कोई सार नहीं है..... यह तो मेरे मन की दुर्बलता है।'

'मैं कुछ समझी नहीं..... दुर्बलता कैसी ?'

मां ने कन्या के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा–'तरंग! तू मेरी अन्तिम सन्तान है..... अति सुंदर है..... और तू यमुना देवी के वरदान से जन्मी है..... कभी-कभी मन में आता है कि जिस कन्या प्राप्ति के लिए तपस्या की थी, वह कन्या पराई बन जाएगी..... मुझे स्वयं अपने हाथों से कन्यादान करना होगा.....'

'मेरा दान क्यों करना पड़ेगा? मैं कहीं नहीं जाऊंगी.....'

'बेटी! पुत्री तो पर घर की स्थापना करने वाली होती है..... तेरे पिताजी ने आज ही एक दूत को राजगृह की ओर भेजा है..... मात्र लड़कों को देखने के लिए..... किन्तु मेरी इच्छा तो यही है कि इसी गांव में उत्तम कुल में वर की खोज की जाए। यहां कोई कमी तो है नहीं, तो फिर बाहर क्यों खोज की जाए? गांव में तू मेरी आंखों के सामने तो रहेगी.....।'

तरंगलोला ने हंसते हुए कहा–'मां! आपकी ममता का कोई मूल्य नहीं..... किन्तु आप व्यर्थ चिन्ता न करें..... मैं आपकी छाया का त्याग कर कहीं नहीं जाना चाहती.....'

'तरंग! ऐसा विचार मत करना। नारी स्वभावत: समर्पण की जीवंत प्रतिमा है..... पिता का घर छोड़कर ससुराल जाती है..... परायों को अपना बनाती है..... अपनी शिकायत किसी के समक्ष नहीं करती और अपनी प्रिय कन्याओं

को दूसरों के हाथों में सौंपती है..... तरंग! नारी मां का रूप है..... जगत् जननी है..... नारी जन्म से मृत्युपर्यन्त अपना सब कुछ दूसरों को देती रहती है..... नारी की यह परम्परा ही भारतीय संस्कृति की शोभा है..... नारी मात्र प्रजनन ही नहीं करती, संतान को संस्कार भी देती है..... तू अपनी कल्पना में भी कभी निराशा के विचार मत लाना।'

तरंगलोला मां की मंगल मुखाकृति की ओर देखने लगी।

नगरसेठ अपने खंड में फर्श पर बिछी मखमली गद्दी पर बैठे थे। सामने एक स्वर्णपात्र में विविध पुष्प रखे हुए थे। उनकी दृष्टि सप्तपर्ण के कुसुम पर पड़ी। उसकी मनमोहक सुगंध पूरे खंड को सुवासित कर रही थी। सेठजी ने द्वार के पास खड़े दास की ओर देखकर कहा—'तरंग को बुला ला.....'

दास चला गया।

सेठ ने सोचा कि इस विचित्र फूल को दिखाकर तरंगलोला की परीक्षा करनी है।

कुछ ही समय के पश्चात् अपनी मां और एक परिचारिका के साथ तरंगलोला आ पहुंची। पिताजी को नमन कर बोली—'पिताश्री! क्या आज्ञा है?'

'मुझे यह फूल तुझे दिखाना था..... यहां बैठ और मुझे बता कि यह फूल सुंदर क्यों है?' सेठ ने सप्तपर्ण का फूल तरंगलोला के हाथ में दिया।

सुनंदा एक ओर बैठ गई।

तरंगलोला तत्काल बोल पड़ी—'यह तो सप्तपर्ण का पुष्प है.....'

'तो फिर इसका वर्ण यह क्यों है? देख, दो-चार अन्य पुष्प भी पड़े हैं।'

तरंगलोला ने शांतभाव से कहा—'पिताश्री! यह सप्तपर्ण का फूल है, इसमें कोई संशय नहीं है..... और इस फूल पर कमलपुष्पों के रजकण पड़े हुए हैं, अतः सप्तवर्ण के पुष्प का रंग पीला दीख रहा है।'

'पुत्री! कमलपुष्पों के रजकण इन फूलों का स्पर्श कैसे कर पाते हैं?'

तरंगलोला बोली—'इस फूल का वृक्ष ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहां कोई कमलवन हो..... और कमलपुष्पों से मधु संचय करने के लिए गई हुई मधुमक्षिकाएं मधु लेकर लौटते समय इस वृक्ष के ऊपर से उड़कर जाती हों और उस समय मधुमक्षिकाओं के पंखों पर चिपटे रजःकण इन फूलों पर पड़े हों, ऐसा प्रतीत होता है। आप सूंघ कर देखें..... सप्तपर्ण की मादक सुवास के साथ कमलपुष्प की मधुर सुवास भी आएगी। दोनों का मिश्रण है। मानो मूल पुष्प की सुवास ही बदल गई हो।'

ऋषभसेन पुत्री की ओर प्रसन्नदृष्टि से देखते हुए बोले—'तेरा अनुमान ठीक है..... अब तू योग्य हो गई है.....'

'किस बात में?'

'तेरी मां समझ गई' कहकर ऋषभसेन ने पत्नी की ओर देखा।

पुत्री ने मां की ओर मुड़कर कहा–'मां! मैं क्यों नहीं समझी?'

'गत रात्रि की चर्चा भूल गई?'

'ओह!' कहकर तरंगलोला उठ खड़ी हुई और चंचल हरिणी की भांति खंड से बाहर निकल गई।

सुनंदा बोली–'कैसी शर्मीली!'

'जब शरीर पर लज्जा का रंग आने लगे तब समझ लेना चाहिए कि कन्या विवाह के योग्य हो गई है।'

सुनंदा ने बात को मोड़ देते हुए कहा–'तरंग ने जो कहा, क्या वह ठीक था?'

'हां, उसका अनुमान सही है। गांव के बाहर जो अपना उपवन है, वहां सप्तपर्ण के दो वृक्ष हैं। उपवन में एक सरोवर है, जिसमें कमल उगे हुए हैं। तरंग का सारा कथन प्रमाणित होता है।

'तो हमें एक बार उपवन में जाना है' सुनंदा बोली।

'खुशी से। परन्तु तरंग का क्या करेंगे ?'

'वह भी अपनी सखियों के साथ वहां आएगी।'

'परन्तु जलाशय को देखकर·····'

'विगत सात वर्षों से हमने उसे जलाशयों से दूर रखा है। संभव है उसके मन से वह चमक मिट गई होगी।'

और एक दिन पूरे ठाटबाट के साथ नगरसेठ ने बाह्य उद्यान में जाने का निश्चय किया।

१०. स्मृति का संपुट

सुनंदा ने जब पद्मवन में आने का निमंत्रण अपने सगे-संबंधियों की स्त्रीवर्ग को भेजा तो सभी ने निमंत्रण को हृदय से स्वीकार कर लिया।

एक तो कौशांबी नगरी के कुबेरपति नगरसेठ की पत्नी का निमंत्रण, और दूसरी वाहन, भोजन आदि की सारी व्यवस्था नगरसेठ की ओर से····· तीसरा स्त्रीवर्ग को इतने लंबे समय तक, लगभग तीन प्रहर तक स्वतंत्र रूप से विचरण करने का अवसर····· इन तीनों कारणों के कारण सभी ने निमंत्रण को आशीर्वाद माना।

और जब उषा की मधुर वेला में सभी पद्मवन की ओर प्रस्थित हुए तब चालीस रथों का काफिला एक साथ निकल पड़ा। प्रभात होने से पूर्व सभी पद्मवन में पहुंच गए। एक रथ में तरंगलोला और सारसिका थी····· साथ में परिचारिकाओं का यूथ था····· रक्षक थे····· और वहां पहले से ही पहुंचे हुए

दास-दासी और पाकशास्त्री भी थे।

इस प्रकार अत्यंत स्वच्छ और रमणीय उस पद्मवन में मानो एक छोटी-सी नगरी बस गई····· वह भी त्रिया नगरी·····।

सेठानी ने और उसकी समवयस्क स्त्रियों ने बहुरंगी वस्त्र धारण कर रखे थे। ये प्रौढ़ वय की होने पर भी यौवन की-सी मदमस्ती से उल्लास अनुभव कर रही थीं। प्रत्येक स्त्री अलंकारों से अलंकृत थी। किसी की कटिमेखला के छोटे घुंघरू मधुर ध्वनि प्रसारित कर रहे थे तो किसी के पायल बज रहे थे।

युवा कन्याएं और नवपरिणीता स्त्रियां अत्यंत उल्लास में क्रीड़ा कर रही थीं। वे निर्बन्ध रूप से निर्भयतापूर्वक इधर-उधर घूम रही थीं।

तरंगलोला, सारसिका और दो परिचारिकाएं पद्मवन की शोभा देखती हुई चारों ओर चक्कर लगा रही थीं।

स्त्रियां जब गृहचिन्ता से मुक्त होकर ऐसे आमोद-प्रमोद भरे स्थान में आ जाती हैं तब उनकी आन्तरिक उमंगें उछलने लगती हैं।

समवयस्क स्त्रियां ऐसे समय में अपने विकास की बातें भी कर लेती हैं और कोई-कोई स्त्री किसी एक पुष्प की तुलना अपने यौवन की मदमस्ती के साथ करती है।

पद्मवन विशाल था। पद्मवन में स्थित पद्मसरोवर अत्यंत रमणीय था। मध्याह्न के पश्चात् जलक्रीड़ा की योजना थी और संध्या होते-होते यहां से अपने-अपने निवास की ओर जाने का निश्चय था।

परन्तु कुछेक प्रौढ़ नारियों ने जलाशय की सुंदरता से पराभूत होकर उसी समय जलक्रीड़ा करने का निश्चय किया।

सेठानी ने कहा—'जलक्रीड़ा का आनन्द तो मध्याह्न के बाद ही आएगा। उस समय जल भी कुछ तप जाएगा और हम भी श्रमित हो जाएंगी····· उस समय····· प्रथम प्रातःकाल का कार्य संपन्न कर हमें तरंगलोला द्वारा प्रस्तुत सप्तपर्ण की कल्पना को जांचने के लिए सप्तपर्ण के वृक्ष के पास चलना है।' सुनन्दा ने कहा।

'ठीक है····· आज की उद्यानिका का सही आनन्द तो वही है' दो-तीन स्त्रियां बोल पड़ीं।

प्रातःकार्य से निवृत्त होकर प्रौढ़ स्त्रियां तथा अन्य नारियां सप्तपर्ण वृक्ष की ओर रवाना हुईं। वह वृक्ष सरोवर के किनारे पर था। तरंगलोला भी अपनी सखियों के साथ उद्यान-भ्रमण के लिए चल पड़ी थी।

उभरता यौवन और चिरप्रतीक्षा के बाद मिली स्वतंत्रता। ऐसा अवसर कौन चूके? तरंगलोला तो देवलोक की परी की भांति कभी लतामंडपों में, कभी निकुंजों में तो कभी फलदार वृक्षों की छांह में फुदक रही थी।

जो स्त्रीसमूह, सप्तपर्ण वृक्ष की ओर चला था, वह भी कल्लोल करती हुई

सरिता की भांति शोभित हो रहा था।

स्त्रियों का यह दूषण मानें या भूषण, सभी स्त्रियां अपने आपको परम सुंदरी मानती हैं और सभी अपने-अपने रूप की प्रशंसा करती हैं। यह रूप अस्थायी है, अस्त होने वाला है, इस सत्य को जानती हुई भी प्रौढ़ स्त्रियां भी इस सत्य को भूल जाती हैं।

प्रौढ़ और अन्य स्त्रियों का समूह रूप की गंगा की भांति आगे बढ़ रहा था। प्रथम यौवन की मस्ती में अनुभव का अमृत नहीं होता, फिर भी प्रवृत्तिजन्य होने से वह आकर्षक और सुहावना होता है। जबकि ढलते यौवन में अनुभव की अमृतभरी मस्ती खिल उठती है। क्योंकि इस उमंग में झूलती आई स्त्री को यौवन की विदाई वेला निकट आ गई है, यह स्मरण भी नहीं रहता।

ये प्रौढ़ नारियां स्थान-स्थान पर पक्षियों के कलरव और उनके प्रेम कल्लोलों को देखकर खड़ी रह जाती थीं और स्वयं की यौवन मस्ती उस समय आंखों के सामने नाचने लगती थी। चलते-चलते एक सप्तपर्ण का पेड़ दीखा····· पवन के कारण सप्तपर्ण के सुंदर श्वेत और बड़े पुष्प नीचे गिर पड़े थे। एक सखी ने सुनन्दा के सामने देखकर कहा–'सप्तपर्ण के ये श्वेत पुष्प पृथ्वी पर गिर पड़े हैं–बेचारे मुरझा जाएंगे।'

तत्काल दूसरी एक विनोदप्रिय स्त्री बोली–'ये तो सप्तपर्ण के पुष्प नहीं हैं·····'

'तब तो तुमने कभी सप्तपर्ण के फूलों को देखा ही नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है।' सुनंदा ने कहा।

'देवी! आपने मेरे कथन का आशय नहीं समझा। जो वृक्ष पर वृन्त से आबद्ध हैं वे तो सप्तपर्ण के ही पुष्प हैं, परन्तु जो भूमि पर पड़े हैं वे नहीं।'

तीसरी बोली–'तो फिर ये कौन-से फूल हैं?'

'ये फूल हैं ही नहीं।'

'हें····· दो-चार स्त्रियां आश्चर्यचकित नयनों से उस विनोदप्रिय स्त्री की ओर देखने लगीं।'

विनोदप्रिय सखी ने कहा–'फूल तो तब तक ही फूल रहता है जब तक वह अपनी डाली में लगा रहता है। वहां से च्युत होने के बाद वह डंठल मात्र रह जाता है।

स्त्रियों का विनोद कभी-कभी अनन्त हो जाता है।

सुनंदा बोली–'अभी हमें दूर तक जाना है।' हम आगे चलें। पद्म सरोवर के किनारे दो-तीन सप्तपर्ण के वृक्ष हैं····· सभी उसी ओर अग्रसर हुए।

और सभी ने देखा कि पद्मरेणु के स्पर्श से पीले पड़े सप्तपर्ण के फूलों को देखकर सभी तरंगलोला की दृष्टि ही सराहना करने लगीं।

तरंगलोला ने घूमते-घूमते कमल की गंध वाला एक सुवासित श्वेत पुष्प देखा और उसने सावधानीपूर्वक उसे शाखा से तोड़ डाला..... इतने में ही पद्म सरोवर के कमलों से निकली मधुमक्षिकाओं ने तरंगलोला के वदन पर आक्रमण कर दिया। यह देखकर तरंगलोला चौंकी और उसने अपना कोमल हाथ मुंह के आगे हिलाना प्रारंभ किया..... परन्तु वृक्ष के कोमल पल्लवों जैसा हाथ क्या असर करे.....? तरंगलोला धीरे से चीखी, परन्तु उसकी चीख कैसे सुनाई दे, जब कि चारों ओर आनन्द का सागर हिलोरें लेता हो। तरंगलोला ने प्रयत्न कर मुंह ढ़ांका..... कुछ राहत मिली..... मधुमक्षिकाओं से बचने के लिए पासवाले मंडप में चली गई। वहां सारसिका भी खड़ी थी। उसने सखी की अकुलाहट देखकर कहा–'क्यों तरंग! लगता है मधुमक्षिकाओं ने तुम्हें परेशान किया है?..... अरे! अभी भी तुम्हारे वदन पर एक-दो मक्षिकाएं बैठने की कोशिश कर रही है..... तुम मत घबराओ..... बेचारी मधुमक्षिकाएं भी तुम्हारा पुष्प जैसा वदन देखकर भ्रम में घिर गई हैं..... अभी ये अपने आप उड़ जाएंगी.....'

'तू कहां गई थी?'

'मैं पद्मवन की ओर सप्तपर्ण के फूलों को देखने गई थी।'

'तो चल, मैं भी चलती हूं।'

कदली मंडप से बाहर निकलते ही सारसिका बोली–'तरंग! नहीं, नहीं..... पद्मसरोवर के पास जाना उचित नहीं है।'

'क्यों?'

'जलाशय को देखकर तुम्हारा चित्त अस्वस्थ हो जाता है, इसलिए.....।'

'पगली कहीं की! बाल्यावस्था में ऐसा होता था.....अब क्या होता है?' कहकर तरंगलोला पद्मसरोवर की ओर अग्रसर हुई।

और दोनों चलकर पद्मसरोवर के पास आईं। सरोवर का यह भाग कमल-समूहों से अत्यंत लुभावना लगता था। उसमें श्वेत, नील, स्वर्णिम तथा रक्तकमल शोभित होते थे। उसको देखते-देखते आदमी आनन्दविभोर हो जाता था, परन्तु देखने से उसे तृप्ति नहीं मिलती थी।

इन कमलों पर भ्रमर तो गूंजते ही थे..... साथ ही साथ मधुमक्षिकाएं भी एकधार झणकार कर अपने आनन्द को अभिव्यक्त करती थीं।

सरोवर में श्वेत हंसों की पंक्ति तैर रही थी। इन्हें देख दोनों सखियां अभिभूत-सी हो गईं। हंस-हंसिनी के युगल आपस में केलि-क्रीड़ा करते हुए आनन्द मना रहे थे।

और अन्यान्य पक्षी भी तट पर स्थित वृक्षों पर, लताओं और झुरमुटों पर कल्लोल कर रहे थे। यह दृश्य देखकर तरंग बोली–'सखी! मनुष्य सुखी है या पक्षी? देखो, पक्षी कितने आनन्दित हैं?'

सारसिका बोली–'तरंग! मनुष्य के पास बुद्धिशक्ति है। अतः वह सुख-दुःख को पृथक् कर सकता है..... और इन पक्षियों का ज्ञान सीमित होता है..... इनकी इच्छाएं भी निश्चित होती हैं, इसलिए देखने वालों को ये सुखी दिखाई देते हैं। अन्यथा इनमें भी वैर, ईर्ष्या, विरह-वेदना का अनुभव होता ही है।'

तरंगलोला कुछ नहीं बोली। उसकी दृष्टि कल्लोल कर रहे कुछेक चक्रवाक युगलों पर टिकी हुई थी। वे युगल सुंदर लग रहे थे। कुछ चक्रवाक सरोवर की नीली दूर्वा पर आराम कर रहे थे और कुछ प्रेमोपचार। चक्रवाकों की परस्पर प्रीति और ममता को देखकर तरंगलोला अपने मन की गहराइयों में उतर गई। आसपास में कौन है? स्वयं कहां है..... यह सब वह विस्मृत कर चुकी थी।

उसके अन्तर् की गहराई में संचित स्मृतियों के अबोल अनुभव उछल-कूद करने लगे।

तरंगलोला को स्थिरभाव से खड़ी देखकर सारसिका चौंकी और फिर पक्षियों के पारस्परिक कल्लोलों को देखने लगी।

परन्तु तरंगलोला की आन्तरिक स्थिति भिन्न थी..... इस जन्म में जिसका अनुभव कभी न किया हो, वैसा अनुभव उसे होने लगा और विचित्र अनुभव स्मृतिपटल पर उभरने लगे।

जातिस्मृति ज्ञान का अवतरण ऐसे क्षणों में ही होता है..... तरंगलोला का मन विगत जन्म की स्मृतियों में उलझता गया। पूर्वभव की स्मृति होते ही वह चौंकी और दूसरे ही क्षण वह मूर्च्छित होकर नीचे गिर पड़ी। सारसिका ने उसे संभाला। उसको वहीं भूमि पर सुला दिया। उसे यही प्रतीत हुआ कि जलाशय के कारण ही तरंग की यह दशा हुई है। आस-पास देखा। परन्तु अन्यान्य स्त्रियां दूर थीं..... साथ में आई हुई परिचारिकाएं भी अलग-अलग पड़ गई थीं..... अब क्या किया जाए? तरंगलोला को मूर्च्छित छोड़कर कैसे जाऊं? सारसिका सरोवर के पास गई और कमलपत्र के एक दोने में पानी लाकर तरंगवती के वदन पर धीरे-धीरे छींटे देने लगी। दोने का पानी खाली होते ही वह दूसरी बार उसे भरकर पुनः छींटे देने लगी। मूर्च्छितावस्था में भी तरंगलोला की आंखों से आंसू बह रहे थे..... यह क्या? आंसू कैसे आ रहे हैं? सारसिका पुनः जल के छींटे देने लगी और अपने पल्लू से उसकी आंखें पोंछती रही..... कुछ समय पश्चात् तरंगलोला ने आंखें खोली। सारसिका ने पूछा–'सखी! क्या हो गया था? जलाशय को देखकर चौंक गई थी?'

'नहीं..... ऐसा कुछ नहीं हुआ।'

'तो फिर क्या हुआ?'

तरंगलोला उठी। सारसिका ने उसे कहा–'हम कदली मंडप में चलें..... वहां धूप है' कहकर सारसिका ने अपनी प्रिय सखी को धीरे से खड़ी कर दोनों

पास वाले कदली कुंज में चली गई।

वहां सारसिका ने तरंग को एक शिलापट्ट पर बिठाया। उसके पीठ पर हाथ फेरती हुई वह बोली–'तरंग! तू चौंकी भी नहीं, मधुमक्षिकाओं ने तुझे नहीं काटा तो फिर अचानक तू मूर्च्छित कैसे हो गई? मूर्च्छित अवस्था में भी तेरी आंखों से अश्रु प्रवाह चल रहा था। सखी! रोग को सहलाना नहीं चाहिए। उसका पालन-पोषण नहीं करना चाहिए। प्रारंभ में ही उसका प्रतिकार कर देना चाहिए..... अवश्य ही तेरे कोई आन्तरिक पीड़ा है कि तू जलाशय को देखते ही अव्यवस्थित हो जाती है.....तरंग। तुझे क्या हो गया था?'

'सखी! मैं सच कहती हूं, मुझे वैसा कुछ भी नहीं हुआ था, न मैं चौंकी थी और न चक्कर ही आए थे।'

'तो फिर मूर्च्छित कैसे हुई? मुझे तो लगता है कि तुझे अपस्मार नामक रोग हुआ है..... परन्तु यह रोग तेरे कैसे हो? क्यों हो? तू मानसिक चिंता से मुक्त है..... माता-पिता का तेरे पर अपार प्रेम है। तेरे सभी भाई तुझे देखते रहते हैं, तेरा ध्यान रखते हैं..... सभी प्रकार से तू सुखी है..... तो फिर यह कैसे हुआ.....।'

'सखी! तू इतनी व्याकुल मत हो। मैं नीरोग और स्वस्थ हूं... मेरी मूर्च्छा के पीछे कोई रोग होने की तू कल्पना मत कर.....।'

'तो बता, और क्या कारण हो सकता है?'

'कारण बिना कार्य नहीं होता..... परन्तु मैं कैसे बताऊं?'

'क्या तुझे मेरा विश्वास नहीं है?'

'सखी! मेरा जितना विश्वास अपने आप पर है, उससे अधिक विश्वास है तेरे पर..... परन्तु बात अनोखी है, नहीं मानी जा सकने वाली बात है.....'

'सारसिका! जीव के साथ अतीत के संस्मरण जुड़े रहते हैं और जब वे जागृत होते हैं तब मनुष्य अपना भान भूल जाता है। मैं भी ऐसे ही एक स्मृति के जाल में फंस गई थी..... स्मृतियां अत्यंत मधुर और एक दर्दभरी चिनगारी.....'

'तरंग! तू होश में बोल रही है या बेहाशी में? कैसी मधुर स्मृति और कैसी दर्दभरी चिनगारी!'

'पगली! मैं पूर्ण जागृत अवस्था में बोल रही हूं।'

'अच्छा स्मृति की बात बता।'

तरंगलोला बोली-'पूर्वजन्म के प्रसंग जो मेरे साथ जुड़े हुए थे, वे अचानक एक-एक कर उभरे। चक्रवाक युगलों को देखते ही मेरे मन में खलबली मच गई और मैं स्मृतियों में तदाकार हो गई। शास्त्रकार जिसे जातिस्मृति ज्ञान या पूर्वजन्म का ज्ञान कहते हैं, वह ज्ञान मेरे में जागृत हुआ और तब मेरे पूर्वजन्म का पूरा चलचित्र मेरे मानसपटल पर अंकित होने लगा.....'

'ओह!' कहकर सारसिका तरंगलोला की ओर जिज्ञासाभरी दृष्टि से देखने लगी।

११. व्यथा का उपाय

अन्तर्मानस में उभरते हुए पूर्वजन्म के संस्मरणों के सौरभ में लवलीन बनी हुई तरंगलोला की ओर देख रही सारसिका ने मधुर स्वरों में कहा–'मेरे पर विश्वास·····।'

सारसिका! अतीत के जीवन-संस्मरण प्राणी को मुग्ध बना देते हैं। मैं तेरे से कोई बात नहीं छिपाऊंगी····· परन्तु मैं अपनी बात कहां से प्रारम्भ करूं, यही सोच रही हूं····· ठीक है। तू अंगदेश का नाम तो जानती ही है। अपने पड़ोस में ही है। वह देश अत्यंत समृद्ध, संस्कारी और सुखी है। अंगदेश की जनता शत्रु, चोर और दुष्काल से निर्भय है। क्योंकि राज्य का राजा सदाचारी, धर्मप्राण और कर्तव्यनिष्ठ है। इस देश की प्रजा को अन्य स्वर्ग की कल्पना होती ही नहीं। इस अंगदेश की राजधानी चंपा नगरी है। पवित्र गंगा अंगदेश के मध्य से बहती है। गंगा के दोनों तटों पर विविध वन-उपवन है। वहां हाथी, बाघ, सिंह, वराह जैसे पशु तथा हंस, चक्रवाक, मयूर जैसे पक्षी भी रहते हैं।

मैं वहीं एक चक्रवाकी के रूप में थी। मेरा पति चक्रवाक अति प्रेमार्द्र था। संसार में चक्रवाकों का स्नेह अपूर्व माना जाता है। और हम दोनों का स्नेह जीवन की एक मधुर कविता के समान बन गया था। हम दोनों एक क्षण के लिए भी विलग नहीं होना चाहते थे····· कभी विलग होने का क्षण भी नहीं आया। प्रकृति की कृपा थी कि हम दोनों पूर्ण नीरोग आनन्दपूर्ण जीवन बिताने वाले और प्रेमार्द्र थे। वियोग का एक क्षण भी हमारे लिए युग के समान बन जाता था····· ऐसा था हमारा स्नेहमय जीवन····· हमारा सुखी संसार····· और एक दिन अकस्मात् हमारे सुखी जीवन में एक चिनगारी उछली····· उस समय हम गंगा के किनारे एक लुभावने सरोवर के पास कल्लोल कर रहे थे····· उस समय एक विशालकाय हाथी सरोवर में जलक्रीड़ा करने आया····· वह जल में उतरा····· घड़ी भर जलक्रीड़ा में मस्त रहा····· इतने में ही एक पारधी वहां शिकार के लिए आ पहुंचा····· हम दोनों प्रेमलीला में मस्त थे····· हाथी पानी से बाहर आया····· हम वहां से कुछ उड़े····· और पारधी ने एक बाण छोड़ा····· वह बाण मेरे प्रियतम को लगा····· जैसे वृन्त से फूल टूटकर नीचे गिर पड़ता है, वैसे ही मेरा प्रियतम एक हल्की चीख के साथ जमीन पर लुढ़क गया, हाथी भाग गया·····

'स्वामी को क्या हुआ, यह जानने के लिए मैं नीचे आई और अपनी चोंच से प्रियतम के शरीर को पंपोलने लगी····· परन्तु मेरे स्वामी के प्राण निकल चुके थे····· मैं अकेली सजल नेत्रों से प्रियतम को जागृत करने के लिए प्रयत्न करने

लगी……' इतना कहकर तरंगलोला क्षणभर के लिए रुकी।

सारसिका एकाग्रमन से अपनी सखी का पूर्वभव सुनने लगी। तरंगलोला को मौन देखकर वह बोली–'आगे क्या हुआ?'

'सारसिका! विगत जीवन का वह वियोग आज भी मेरे मन को मथित कर रहा है, अपार वेदना दे रहा है।…… मैं रुदनभरे हृदय से अपने स्वामी के लहूलुहान शरीर को बार-बार पंपोल रही थी, उस समय पारधी वहां आया। उसने मेरे स्वामी के शरीर से बाण निकाला…… टूटे हुए पंख ठीक किए…… फिर कुछ सूखी लकड़ियां इकट्ठी कर मेरे प्रियतम के मृत शरीर का अग्निदाह किया। मैं उस समय आकाश में रुदन करती हुई, अन्यमनस्क भाव से उड़ रही थी और यह दृश्य देख रही थी। मैंने मन ही मन सोचा, प्रियतम के बिना मैं एक क्षण भी जीवित कैसे रह सकूंगी ? क्या हमारे अमिट स्नेह, संबंध का वियोग ही फल है? नहीं…… नहीं…… नहीं…… मुझे भी अपने स्वामी का ही अनुसरण करना चाहिए…… प्राणाधार के बिना जीना भी क्या जीना? प्रेम की हृदयवीणा टूट चुकी है…… अब ऐसे टूटे हृदय से कब तक चिपकी रहूंगी…… अब इसमें से प्रेमगीत कभी प्रगट नहीं होगा। और यदि मेरे स्वामी मेरे से कहीं दूर चले जाएंगे तो भला मैं कहां भटकती रहूंगी? ऐसे विचार आते ही मैं स्वामी की उस जलती हुई चिता में कूद पड़ी और स्वामी की जलती हुई काया के साथ मैंने भी अपनी काया को भस्मसात् कर डाला। सखी! यह मेरे अतीत का वृत्तान्त है। आज जब मैंने चक्रवाक युगलों को क्रीड़ा करते देखा तो वे सारे प्रसंग स्मृतिपटल पर उभर आए।' यह कहकर तरंगलोला एक वेधक निःश्वास के साथ वहीं मूर्च्छित हो गई। सारसिका ने तत्काल शीतलोपचार किए। तरंगलोला की मूर्च्छा टूटी। उसने सारसिका का हाथ पकड़कर कहा–'सखी! मैंने यह सारा वृत्तान्त तुझे बताया है। अन्यत्र इसका कथन न हो। जब तक मैं अपने पूर्वभव के पति को प्राप्त न कर लूं तब तक तू इस वृत्तान्त को अपने हृदय के वज्रमय कपाट में बन्द रखना। किसी को इसकी भनक भी न पड़े। सारसिका! मैंने तेरे से कोई बात गुप्त नहीं रखी है…… मात्र एक बात कह न सकी थी…… बचपन में जब भी मैं जलाशय देखती तब स्मृतियां उभरतीं…… मुझे पूर्वभव का अभास होता। सभी ने इसे चौंकना माना और मुझे जलाशय से दूर-दूर रहने के लिए बाध्य किया…… उस समय मुझे पूर्वभव का स्मरण स्पष्ट नहीं था…… आज वह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गया है…… आज मैंने अपने पूर्वजन्म के पति चक्रवाक को स्पष्टरूप से देखा है और मैंने यह भी निश्चय कर लिया है कि यदि मैं इस जन्म में किसी को पतिरूप में स्वीकार करूंगी तो पूर्वभव के पति को ही स्वीकार करूंगी, दूसरे किसी को नहीं……'

'तरंग, तुझे ऐसा संकल्प नहीं करना चाहिए। मृत्यु के पश्चात् कौन-सा

जीव कहां जाकर उत्पन्न होता है, यह कैसे जाना जा सकता है ? कौन जान सकता है?'

तरंगलोला बोली–'सखी! तू यह बात क्यों भूल जाती है कि मैं पति के पीछे सती हुई हूं। सती का धर्म क्या है ? यदि मुझे मनुष्य जन्म मिला है तो मेरा यह विश्वास भी प्रबल हुआ है कि मेरे स्वामी भी मनुष्यरूप में ही जन्मे होंगे····· फिर भी यदि कर्मयोग से वे प्राप्त नहीं हुए तो मैं आजन्म कुंआरी रह जाऊंगी, परन्तु अन्य किसी के साथ पाणिग्रहण नहीं करूंगी····· अविवाहित रहकर मैं अपने पुरुषार्थ को आत्मोत्कर्ष में लगाऊंगी····· जीवन-मरण पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगी····· चक्रवाकी के भव में मैंने केवल प्रेम ही जाना था, परन्तु इस भव में मैं अज्ञान दशा में नहीं रही····· मैंने यह स्पष्ट रूप से जान लिया है कि प्रेम-संबंध से द्रोह करते-करते जीवन को उन्नत पुरुषार्थ में लगाना श्रेयस्कर होता है।'

'सखी! तेरा दर्दभरा वृत्तान्त सुनकर मैं भी मर्माहत हुई हूं। कर्म का विपाक कितना भयंकर होता है? कैसा होता है? प्राणी को कर्म भोगने ही पड़ते हैं····· परन्तु सखी! तू धैर्य से विचलित मत होना। मुझे विश्वास है कि भाग्य तेरे पर प्रसन्न होगा और तू अपने पूर्वभव के पति को प्राप्त कर सकोगी।' यह कहकर सारसिका ने तरंगलोला को सान्त्वना दी और सरोवर से कमलपुट में पानी लाकर तरंग के अश्रुमलिन आनन को स्वच्छ किया।

उस कदलीकुंज से दोनों सखियां बाहर आई और जहां अपनी सखियों के साथ माता बतिया रही थी वहां आ पहुंचीं।

माता ने तरंगलोला की ओर देखा। तरंगलोला के नयन लाल थे····· मुंह म्लान हो गया था····· वह तत्काल तरंग से लिपट कर बोली–'तरंग! क्या हुआ है तुझे? इस आनन्दमय क्षण में यह उदासी क्यों? तू आज कुम्हलाई कमलिनी-सी लग रही है। क्यों?'

मां का वात्सल्य और प्रेम देखकर तरंगलोला रोने लग गई। वह बोली–'मां! मस्तक में अत्यधिक पीड़ा है।'

'अरे! तूने पहले क्यों नहीं बताया? चल, अब हम घर चलते हैं। मैं तेरे साथ ही चलती हूं····· अब मुझे भी यहां रहना नहीं है।' यह कहकर सुनंदा ने घर जाने की तैयारी की। उसने तब अपनी सखियों की ओर देखकर कहा–'आप सब स्नान-भोजन आदि से निवृत्त होकर धीरे-धीरे घर की ओर आना····· एक आवश्यक कार्यवश मुझे शीघ्र ही घर पर जाना पड़ रहा है।'

और कुछ समय पश्चात् सुनंदा तरंगलोला को साथ ले रथ में बैठी। उसके साथ-साथ कुछेक दासियां, सारसिका और सेवक भी रथ में बैठकर वहां से चल पड़े।

पत्नी और पुत्री को घर आए देख सेठ ऋषभसेन ने पत्नी से पूछा–'तुम सब इतने शीघ्र कैसे आ गए। सायं आने वाले थे। क्या वहां मन नहीं लगा या अन्य कुछ·····?'

सुनंदा ने तरंगलोला के अस्वस्थ होने की बात कही।

तत्काल राजवैद्य को बुला भेजा।

कुछ ही समय पश्चात् राजवैद्य सेठ के विशाल प्रांगण में आ पहुंचे। सुनंदा ने वैद्यराज का सत्कार किया और उन्हें तरंगलोला के शयनकक्ष में ले जाने के लिए स्वयं आगे हुई।

राजवैद्य ने तरंगलोला की फूल-सी काया को देखा। फिर नाड़ी की जांच कर बोले-'बेटी! सामान्य ज्वर है····· चिंता अथवा शोक के कारण जो ज्वरांश होता है, वैसा ही ज्वरांश है। क्या कोई चिंता अथवा शोक का कारण बना था?'

सारसिका बोली–'हम तो पद्म उपवन में भ्रमणार्थ गए थे। वहां कैसी चिन्ता? कैसा शोक?'

वैद्यराजजी ने उपचार की दो-चार बातें कही और वे विश्राम करने को कहकर वहां से उठे।

सेठ ऋषभसेन ने उनका यथायोग्य सम्मान किया और घर तक पहुंचाने के लिए उत्तम अश्वों वाले रथ की व्यवस्था की।

वैद्यजी वहां से प्रस्थित हो गए।

उपचार प्रारंभ हुआ।

परन्तु·····

अन्तर् में शोक, चिन्ता और उद्वेग हों तब बाह्य उपचार कारगर नहीं हो सकते।

तरंगलोला के हृदय में जो स्मृति-कुसुम खिले थे वे कुम्हला जाएं वैसे तो थे नहीं। चक्रवाक पति के साथ बिताए गए स्नेहभरे क्षण स्मृतिपटल पर उभरने के पश्चात् कैसे भुलाए जा सकते थे? स्नेहमय जीवन पर जब अकस्मात् वज्राघात होता है तब परिताप का पार नहीं होता···· पति को बाण लगा····हाथी भाग गया···· पारधी ने चिता सुलगाई···· स्वयं ने अपनी अन्तर्व्यथा शांत करने के लिए इसी चिता में झंपापात किया और पति की जलती हुई काया से लिपटकर भस्मसात् हो गई···· एकमेक हो गई···· ये सारे दृश्य उसके मस्तिष्क में स्थिररूप से अंकित हो गए थे।

चार-छह दिन बीत गए। तरंगलोला पूर्ववत् स्वस्थ नहीं बनी। उसके मन में तो विगत जीवन के दृश्य ही बार-बार उभर रहे थे····· ओह! मेरे स्वामी मुझे कहां मिलेंगे? कब मिलेंगे? उनके बिना जीवन का अर्थ ही क्या रहेगा? ये विचार तरंगलोला के मन को मथ रहे थे।

सारसिका देख चुकी थी कि तरंग का मन उदास रहता है। वह जो कुछ

करती है, उसमें उल्लास रहता ही नहीं। केवल माता-पिता को संतोष दिलाने के लिए कृत्रिम हंसी हंसती है और अनमने भाव से भोजन करती है। रात में सोने का बहाना मात्र करती है। सारसिका यह सब जानकर अत्यधिक व्यथित हो रही थी। वह बोली–'तरंग! यदि तू इस प्रकार मन की व्यथा को भोगती रहेगी तो तेरा रूप, सौन्दर्य, लावण्य और शक्ति नष्ट हो जाएगी।'

'सारसिका! मैं सब समझती हूं। पर विवश हूं। मेरे पूर्वभव के स्वामी के सुखद संस्मरण एक क्षण के लिए भी मेरे से विलग नहीं होते····· तेरे साथ शतरंज की क्रीड़ा करते समय भी मेरा मन अन्यत्र पिरोए रहता है····· झरोखे से प्रसार पाती हुई चन्द्रकिरणें भी शीतलता के बदले अग्नि के कण ही बरसाती हैं····· फल भी मुझे अप्रिय ही लगते हैं····· मैं रात कैसे बिताती हूं, कोई नहीं जानता·····।'

'इसीलिए मैं कहती हूं कि चिंता अग्नि-रहित भयंकर चिता हैं····· यदि तू चिंता में रहेगी तो काया की सुन्दरता नष्ट हो जाएगी····· तू चतुर है····· इतना तो सोच····· क्या इस प्रकार चिंता करने से तू पुनः चक्रवाकी बन जाएगी? क्या स्मृतियों के परों से उड़ने मात्र से तू अपने प्रियतम चक्रवाक से मिल पाएगी? या चक्रवाक स्वयं यहां आ जाएगा? यदि तू कुछ करना चाहती है तो धैर्य को मत गवां। अभी भी एक बड़ी कठिनाई तेरे सामने है। सारसिका ने कहा।

'कौन-सी कठिनाई?'

'यदि चक्रवाक का जीव मनुष्य रूप में जन्मा भी होगा तो तू उसे कैसे पहचान पाएगी?'

'इसके लिए मेरे मन में एक विचार आता है।'

'क्या?'

'मैं चित्रकला जानती हूं। मैंने उसमें निष्णातता प्राप्त की है। मैं चाहती हूं कि मैं अपने पूर्वभव की घटनाओं को सजीवरूप में पट्टिकाओं में अंकित करूं... संभव है मेरे प्रियतम का जीव इन दृश्यों को देखकर प्रतिबुद्ध हो·····संभव है उसे भी जातिस्मृति ज्ञान उत्पन्न हो जाए·····'

'तेरा विचार उत्तम है····· तू अपनी कला को साधन बना····· यदि धैर्य के साथ तू चित्रांकन करेगी तभी उनमें सजीवता आएगी और तू भी स्वस्थ रहेगी। भविष्य में कौमुदी पर्व पर हजारों व्यक्ति इस नगर में आते हैं····· तेरे घर में उस दिन महान् उत्सव मनाया जाता है। सामने वाले राजमार्ग से चलते-फिरते सहस्रों व्यक्ति तेरे चित्रांकन-पट्टों को देखें–ऐसी व्यवस्था की जा सकेगी।'

सारसिका वाक्य पूरा करे उससे पूर्व ही तरंगलोला बोल पड़ी–'ओह! तेरी कल्पना सटीक है····· संभव है मेरे पुण्योदय से मेरे स्वामी मुझे प्राप्त हो जाएं,····· ठीक है, यदि मैं चित्रांकन में एकतान हो जाऊंगी तो व्यथा का भार भी हल्का हो जाएगा।'

१२. पूर्णिमा की निशा

उत्तर भारत में कौमुदी पर्व—कार्तिकी पूर्णिमा को बहुत ठाट-बाट के साथ मनाया जाता था।

अभी कार्तिकी पूर्णिमा के आने में छह महीने शेष थे।

तरंगलोला का मन चित्रांकन के लिए विविध कल्पनाएं कर रहा था। चित्रांकन का उद्देश्य उसके भावों में उथल-पुथल मचा रहा था। वह एक कल्पना करती, वह मिटती। दूसरी कल्पना आती और वह कल्पना अन्यान्य बीसों कल्पनाओं को जन्म देकर मिट जाती। यह क्रम चला। एक दिन उसने मन में चित्रांकनों का ढ़ांचा स्थिर कर लिया और चित्रांकनों के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने में मन लगाया। सारी सामग्री त्वरा से एकत्रित हो गई।

चित्रांकन के लिए एक विशेष खंड निर्धारित कर लिया गया। वहां सारी व्यवस्था कर दी गई। तरंगलोला के भाइयों ने जब चित्रांकनों की बात सुनी तो वे प्रसन्नता का अनुभव करने लगे। एक दिन एक भावज ने चित्रकक्ष में आकर पूछा-'बहिन! आप किस प्रकार के चित्रों का अंकन करना चाहती हैं।'

'भाभी! भावना तो बहुत मधुर है, यदि पूरी हो तो·····।'

'जरूर पूरी होगी····· आप अपने उत्साह को मंद न होने दें····· आप चित्रकला में सिद्धहस्त हैं····· इस विशाल भवन में टंगे हुए आपके चित्र इतने सजीव हैं कि उन्हें देखते रहने का मन होता है। आप कौन-कौन से चित्र अंकित करेंगी?'

'प्राकृतिक दृश्यों से भरपूर एक रसमयी कथा का चित्रांकन करना चाहती हूं।'

'तब तो वह कथा किसी नर-नारी के स्नेह प्रसंग की होगी?'

तरंगलोला खूब हंसी। सारसिका बोली—'भाभी! नर-नारी के बिना संसार की कोई कथा लुभावनी नहीं होती····· परन्तु कलाकार कल्पनाओं में ही विहरण करते हैं····· कल्पना कब किस दिशा में मुड़ जाए, कहा नहीं जा सकता।'

तरंगलोला ने सारसिका की ओर देखकर कहा—'सखी! मैं एक निश्चित ध्येय से आगे बढ़ूंगी। कुछेक प्राकृतिक दृश्यों का जीवन्त चित्रण करना चाहती हूं····· और इन दृश्यों में एक मधुर वेदना से ओतप्रोत कथा भी चित्रित हो जाएगी·····।'

'मधुर वेदना?'

'हां भाभी! वेदना मात्र करुण होती है, किन्तु देखने में मनोज्ञ होने के कारण वह मधुर बन जाती है।'

'तो फिर उन दृश्यों की कल्पना तो मुझे बताएं' भाभी ने आग्रहपूर्वक कहा।

'मैं कैसे बताऊं? कल्पना मनोगत है और उसे चित्र में उतारना है..... अभी तो कार्य का प्रारंभ भी नहीं हुआ है..... फिर भी जो क्रम मैंने निश्चित किया है वह इस प्रकार है–एक चक्रवाक दंपती है..... इनका स्नेहजीवन अति मधुर है..... दोनों वनप्रदेश में रहते हैं..... एक ओर पवित्र गंगा नदी का किनारा है..... दूसरी ओर छोटा किन्तु मनोहर सुंदर सरोवर है..... वनप्रदेश में विविध प्रकार के वृक्ष हैं..... चक्रवाक दंपती इस प्रदेश में कैसे रहते हैं, कैसा मधुर जीवन जीते हैं, कैसे आनन्दमग्न होते हैं, दोनों परस्पर कितने खो जाते हैं, आदि-आदि प्रसंगों को क्रमशः चित्रांकित करने का विचार है। साथ ही साथ अन्यान्य पशु-पक्षियों के चित्र भी उसमें होंगे।..... एक दिन उस सरोवर में एक गजराज आता है..... एक पारधी आता है..... हाथी जलक्रीड़ा कर सरोवर के किनारे आता है। उस समय चक्रवाक दंपती हाथी की मस्ती देखने आकाश में उड़ते हैं..... पारधी बाण छोड़ता है..... वह बाण नरचक्रवाक के शरीर को बींध डालता है..... करुण चीख के साथ नरचक्रवाक भूमि पर लुढ़क जाता है..... चक्रवाकी स्तब्ध रह जाती है..... हाथी भाग जाता है..... पारधी शोकमग्न होकर चक्रवाक के शरीर से बाण निकालता है..... एक चिता जलाकर चक्रवाक का दाह संस्कार करता है..... और वियोग के दुःख से झूरती हुई चक्रवाकी उस चिता की अग्नि में झंपापात कर लेती है और पति के साथ जलकर राख हो जाती है..... बस, मेरे चित्रों की यह मधुर वेदनामय कल्पना है।'

'ओह! यह तो दर्दभरा कथानक है। आपने विवाह नहीं किया, इसलिए यह मधुर वेदना जान पड़ती है..... अच्छा, आप कितने चित्रों में इस कथानक को चित्रित करेंगी.....?'

'भाभी! ऐसे तो मैं इस पूरे वृत्तान्त को पचास चित्रों में समाप्त करना चाहती हूं..... हां, पांच-दस कम या अधिक भी हो सकते हैं।' तरंगलोला ने कहा।

'कथा हृदयवेधक है..... मैं आपकी सफलता चाहती हूं..... इस कार्य में समय तो लगेगा ही.....।'

'हां, भाभी! समय भले ही लगे, मैं इसको पूरा करके ही श्वास लूंगी। मनुष्य जब कार्य से तदाकार हो जाता है, तन्मूर्ति हो जाता है, तब कार्य पूरा होता ही है। समय की उसमें प्रतिबद्धता नहीं होती।'

दूसरे ही दिन से तरंगलोला ने कार्य प्रारंभ कर दिया। स्वयं को जातिस्मृति ज्ञान होने के कारण पूर्वभव के सारे दृश्य उसके स्मृतिपटल पर यथार्थरूप में उभर रहे थे..... दृश्यों को अंकित करने की निपुणता उसने इस जन्म में सीखी थी..... तीन दिनों में उसने एक चित्रपट्ट तैयार कर दिया..... इसमें वनप्रदेश और सरोवर का दृश्य था..... विविध पशु-पक्षी वहां क्रीड़ा कर रहे थे, उड़ान भर रहे थे..... यह पहला चित्रपट्ट बहुत सुंदर और यथार्थ बना था।

दिन बीतने लगे। चित्रपट्टक तैयार होने लगे। तरंगलोला के भाई, भाभी, माता-पिता तथा अन्य स्वजनों ने वे चित्र देखे। उनकी सजीवता पर सबने प्रसन्नता व्यक्त की। नगरसेठ और सुनंदा ने सोचा, ऐसे चित्रों के चित्रांकन में लवलीन होकर कन्या बहुत प्रसन्न रहती है, आनन्द का अनुभव करती है। यह अच्छा उपक्रम है। साढ़े चार मास बीत गए पर कन्या को कभी कोई शारीरिक परेशानी नहीं हुई····· ओह! चित्र कितने सुन्दर बनाए हैं! मानो वे सारे दृश्य वास्तविक हों!

और कौमुदी महोत्सव में जब केवल बीस दिन शेष रहे तब तरंगलोला ने बयालीस चित्रपट्टकों में अपने पूर्वजन्म के सारे स्मृतिसंपुट अंकित कर लिए।

सारसिका भी इन चित्रों को देखकर मुग्ध बन गई थी। तरंगलोला ने सारे चित्रपट्टक फ्रेमों में मढ़ा दिए।

कार्तिकी पूर्णिमा के दो दिन शेष रहे। समूचे नगर में कौमुदी महोत्सव की धूमधाम से तैयारियां होने लगीं। दान, धर्म और आराधना के इस पवित्र दिवस पर धनाढ्यों द्वारा विविध प्रकार का दान आदि की पूर्व तैयारियां संपन्नप्राय थीं। नगरसेठ ने भी पूर्ववत् महोत्सव की तैयारियां कर लीं।

संध्या के बीतने पर, प्रतिक्रमण आदि क्रियाएं संपन्न कर सभी सदस्य एकत्रित हुए। देवी सुनंदा ने सभी व्यक्तियों की इच्छा जानने के लिए पूछा—'कल चातुर्मासिक चतुर्दशी है····· उपवास में कौन-कौन साथ देंगे?'

घर के सभी सदस्यों ने उपवास करने की इच्छा व्यक्त की। तरंगलोला ने भी उपवास करने की भावना बताई। यह सुनकर नगरसेठ ने कहा—'बेटी! तेरी भावना में अन्तराय डालना नहीं चाहता, किन्तु इतने दिनों तक तूने अथक श्रम किया है, तू एकाशन करे तो ठीक रहेगा।'

'नहीं, पिताजी! प्रतिवर्ष मैं इस व्रत को करती रही हूं। फिर इस बार क्यों मैं उस व्रत की विराधना करूं? और आप ही तो बहुधा कहते रहे हैं कि व्रत और तप से दृष्टि का विशोधन होता है, चित्त निर्मल बनता है····· तो फिर मैं इस लाभ से वंचित क्यों रहूं?'

माता ने तरंगलोला का समर्थन करते हुए कहा—'तू आनन्दपूर्वक उपवास कर' फिर सारसिका की ओर मुड़कर कहा—'सारसिका! कल तुम घर मत जाना···'

सारसिका ने हंसते हुए 'जी' कहा और मस्तक नमाया फिर कुछेक चर्चाएं कर सभी सदस्य अपने-अपने खंड में चले गए। तरंगलोला भी माता-पिता को प्रणाम कर सारसिका के साथ अपने शयनखंड में चली गई।

दोनों सखियां एक ही पलंग पर सो जाती थीं। दोनों ने कपड़े बदले और पर्यंक पर सो गईं। सारसिका ने प्रश्न किया—'सखी! चित्रों की व्यवस्थित स्थापना के लिए तू मुझे कब बताएगी?'

'राजमार्ग पर अपना एक तिमंजिला भवन है, यह तो तू जानती ही है.....'

'हां।'

'ऐसे तो वह भवन मुक्त है। कोई बाधा नहीं है। उस भवन के मध्यभाग में एक छाया हुआ खुला स्थान है। वहां सभी चित्रों की क्रमशः व्यवस्थापना करनी है। मैंने चित्रों पर अंक भी लगा लिए हैं। पूर्णिमा की रात्रि के प्रारंभ से ही नगर के लोगों के झुंड के झुंड उत्सव की आराधना करने राजमार्ग से गुजरेंगे..... और लगभग सभी सारी रात घूमते रहेंगे..... और यदि पूर्वजन्म के मेरे प्रियतम इस नगरी में उत्पन्न हुए होंगे तो वे भी घूमने निकलेंगे और संभव है इन चित्रों को देखकर उनमें पूर्वजन्म की स्मृति जागृत हो जाए। मृत्यु के समय हम दोनों अपूर्व मस्ती में थे..... उनका मेरे प्रति अपूर्व प्रेम था..... एक क्षण के लिए भी वे मेरे से विलग नहीं होते थे..... इसी प्रेमबंधन के कारण उनका जन्म भी इसी नगरी में हुआ होगा, ऐसा मेरा मन कह रहा है। इसलिए मुझे आशा है कि परसों कौमुदी उत्सव को मनाने जब सभी लोग, आबाल-वृद्ध आएंगे, उनमें वे भी होंगे..... और संभव है इन चित्रों को देखते ही पूर्वजन्म की स्मृति और पूर्वजन्म के सारे घटना-प्रसंग उनके मन पर नाचने लग जाएं।'

सारसिका बोली—'सखी! तेरी श्रद्धा के अनुसार मान लिया जाए कि पूर्वजन्म के पति इस नगरी में जन्मे हों..... और इन चित्रों को देख भी लें..... परन्तु उनको पहचानेगा कौन.....? तू भी पूर्णिमा की रात में पौषध व्रत की उपासना में रहेगी और मैं भी तेरे साथ ही पौषध व्रत स्वीकार करूंगी.....'

'नहीं, सखी! तुझे तो मेरे चित्रों के पास ही रहना होगा..... यदि वे चित्र देखने कक्ष में आ जाएंगे तो अन्य दर्शकों से भी उनके मन पर इन चित्रों का बहुत प्रभाव पड़ेगा और मेरे अनुमान के आधार पर चित्रदर्शन से उनको पूर्वजन्म की स्मृति अवश्य होगी। सखी! जातिस्मृति ज्ञान कर्मावरण के अपनयन के साथ ही साथ विभिन्न निमित्तों से भी होता है। पूर्वजन्म के घटनाप्रसंग इस ज्ञान की उत्पत्ति के सशक्त निमित्त हैं। दूसरी बात है, मैंने जो ये चित्रपट्ट तैयार किए हैं वे जीवन्त दृश्यों के समान हैं..... उस समय जो स्थिति थी उसी को मैंने चित्रांकित करने का प्रयास किया है..... और वह प्रयास यथार्थ परक है..... इसलिए उन्हें अवश्य ही जातिस्मृति ज्ञान होगा और जिसको यह ज्ञान उत्पन्न होता है उसके वदन पर आन्तरिक भाव-विभाव प्रतिबिम्बित होने लगते हैं और उसे मूर्च्छा भी आ जाती है..... जिस व्यक्ति में ऐसा हो, उसे तू ध्यानपूर्वक देखना..... और यदि पूर्वभव के मेरे पति यहां न जन्मे हों अथवा चित्रदर्शन के लिए न आएं तो भी मेरा मार्ग सरल हो जाएगा। इस विराट् भव अटवी में मोह ओर प्रेम के पाश से बंधे हुए जीव पुनः मिलते ही हैं..... इतना होने पर भी यदि वे नहीं मिलेंगे तो तू मेरा निश्चय जानती ही है कि मैं अन्य के साथ विवाह-बंधन में नहीं फसूंगी..... फिर

मैं मोहबंधन का अपनयन कर आत्मदर्शन की आराधना में अपना पुरुषार्थ लगाऊंगी·····।'

सारसिका स्थिरदृष्टि से तरंगलोला को देखती रही। सखी की तीव्र अभीप्सा से उसे यह विश्वास हो गया था कि उसकी भावना अवश्य ही फलित होगी, पूर्वजन्म के पति की प्राप्ति अवश्य होगी।

इस प्रकार बतियाते हुए दोनों निद्राधीन हो गईं।

प्रभात होते-होते पूरा परिवार जाग गया। आज चातुर्मासिक महादिवस था। सभी ने उपवास व्रत किया। आज कर्म-निर्जरा का विशेष दिन था। सभी आराधना में जागरूक थे। व्यापार आदि आज बंद रहता था। पूरा दिन धर्म की आराधना में बीतता था। संध्याकाल में प्रतिक्रमण की आराधना कर अपन-अपने दोषों की स्मृति कर उनका प्रायश्चित्त करते और उनका पुनरावर्तन न हो, इसका संकल्प करते।

चतुर्दशी की रात धर्माराधनापूर्वक व्यतीत हो गई।

कौमुदी पर्व का प्रभात नई उमंगें बिखेरता हुआ उदित हुआ।

नगरसेठ के परिवार ने आवश्यक क्रियाओं से निवृत्त होकर, साधु-संतों के दर्शन कर, भवन पर आकर उपवास का पारणा किया।

कल निर्जरा का पर्व था और आज दान का पर्व था।

नगरी के श्रीमंत, सेठ, सार्थवाह और गृहस्थ अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार दान देने में प्रवृत्त होते थे। वे मानते थे कि दान संपत्ति के त्याग का पुरुषार्थ है····· ममत्व की मूर्च्छा से जागने का उपक्रम है····· सुपात्र दान को वे उत्तम मानते थे। अन्यान्य दानों को वे व्यवहार मात्र मानते थे और गृहस्थ के कर्तव्य बोध से अनुप्राणित होकर वे उसमें प्रवृत्त होते थे। सभी लोग साधु-संतों को गोचरी के लिए पधारने की प्रार्थना करते थे।

दिन बीता। सूर्यास्त के पहले सारसिका ने राजमार्ग पर स्थित भवन के नीचे मंडप में तरंगलोला द्वारा सूचित क्रम से सारे चित्रपट्ट यथास्थान नियोजित कर दिए।

नगरसेठ के उस विशाल भवन में एक सुंदर आराधना कक्ष था। इसी कक्ष में भवन के सभी स्त्री-पुरुष धर्म की आराधना करने एकत्रित होते थे। पर्व तिथियों में इसी कक्ष में पौषध व्रत की आराधना की जाती थी।

तरंगलोला ने माता सुनंदा तथा अपनी भाभियों के साथ पौषध व्रत ग्रहण किया तथा नगरसेठ ने अपने पुत्रों के साथ पौषध व्रत की आराधना स्वीकार की। यह व्रत साधु जीवन जैसा कठिन होता है। पौषध व्रत में संसार की कोई क्रिया नहीं की जाती····· इसमें साधक को ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना में तल्लीन रहना होता है।

रत्नजटिक पर्यंक पर या मसृण गद्दियों पर नहीं सोया जाता। पौषध व्रत स्वीकार करने वाला भूतल पर एक चादर बिछाकर रात बिताता है। उस रात वह नींद को बहुमान नहीं देता, केवल धर्माराधना, धर्मजागरणा करता रहता है। राजा हो या रंक, सेठ हो या नौकर, स्वामिनी हो या दासी–सभी इस व्रत की समानरूप से आराधना करते हैं। इस व्रत की आराधना में किसी की अतिरिक्तता नहीं होती।

यह आराधना त्याग और तप की आराधना है।

सारसिका ने आज पौषध नहीं किया, क्योंकि वह अपनी प्रिय सखी तरंगलोला के कार्य में व्यस्त थी। उसका मन यदा-कदा संशयग्रस्त बन जाता था कि इतनी विशाल नगरी में से इन चित्रों का अवलोकन करने तरंगलोला का पूर्वजन्म का पति कैसे आ पाएगा!

दीपमालिकाओं का पूरा प्रकाश चित्रखंड के प्रत्येक चित्र को स्पष्टता दे रहा था। और उस प्रकाश के आलोक में चित्रपट्टों पर अंकित कथा जीवंत बन रही थी।

रात्रि की तीन घटिकाएं व्यतीत हो चुकी थीं। उस समय नगरी के नागरिकों के झुंड के झुंड कौमुदी महोत्सव मनाने के लिए घर से निकल पड़े थे·····।

१३. पद्मदेव

कौमुदी पर्व की रात!

कार्तिकी पूर्णिमा!

पूर्ण चन्द्रमा आकाश में देदीप्यमान था····· मानो आकाशरूपी सरोवर में विकसित सुनहरा पद्म·····।

नगरसेठ के भवन के पास से मानो मानवों का समुद्र उमड़ने लगा।

अनेक दंपती उल्लासभरे हृदय से कौमुदी पर्व की मस्ती मनाने निकल पड़े थे····· पारिवारिक जन भी सावधानीपूर्वक इधर-उधर देखते हुए चल रहे थे····· वे पूर्ण सावधान थे कि कोई छोटा-बड़ा सदस्य भूल से छिटक न जाए····· कुछेक युवक अपनी मित्रमंडली के साथ रसभरी बातें करते हुए चल रहे थे। कुछेक प्रौढ़ स्त्रियां भी समूहरूप में रंगबिरंगी वस्त्रों को धारण कर नवयौवना की भांति भटकती हुई चल रही थीं।

और वाहनों वाले सेठ-साहूकार अपने-अपने वाहनों में बैठ कर घूमने निकल पड़े थे।

सभी पथिकों की दृष्टि दीपमालिकाओं से जगमगाती उस चित्रशाला पर अवश्य टिकती और अनेक स्त्री-पुरुष चित्रों को देखने मुड़ जाते।

वे चित्रों को देखकर आनन्द का अनुभव करते, प्रसन्नता व्यक्त करते थे····· कुछेक चित्रों से प्रभावित व्यक्ति एक ओर स्थित सारसिका से पूछते कि

चित्र किसने बनाए हैं और यह कथावस्तु क्या है? सारसिका सबको संतोषजनक उत्तर देती और सखी तरंगलोला द्वारा निर्दिष्ट दर्शक-भावनाओं का सूक्ष्मता से आकलन करती।

मध्यरात्रि बीत गई। लोगों के समूह घर की ओर मुड़ने लगे····· सारसिका के आनन पर निराशा की रेखाएं उभरने लगीं, क्योंकि अभी तक ऐसा कोई दर्शक नहीं आया था जो चित्रों को देखकर मूर्च्छित होता अथवा पूर्वजन्म की स्मृति के झूले में झूलने लगता।

जैसे-जैसे रात बीतने लगी, दर्शकों की संख्या घटने लगी और सारसिका की निराशा घनीभूत हो गई····· ओह! इतने श्रम से तैयार किए गए ये स्मृतिपट्ट क्या यों ही सूख जाएंगे? क्या तरंगलोला के पूर्वजन्म के पति का यहां जन्म नहीं हुआ है? यदि जन्मे हों और आज इस ओर न आए हों—क्या यह संभव हो सकता है? ओह! मेरी प्रिय सखी को कितनी वेदना होगी? जिसने आशा के अति सूक्ष्म तार को पकड़ कर इतने स्मृतिचिह्न बनाए हैं, वह आशा का पतला-सा धागा यदि टूट जाएगा तो क्या मेरी सखी का हृदय नहीं टूट जाएगा? सारा आनन्द और उल्लास अकाल में ही मिट जाएगा·····।

हां, मेरी सखी भी कितनी भोली है! क्या यह निश्चित कहा जा सकता है कि पूर्वभव के पति का जीव इसी नगरी के किसी संभ्रान्त कुल में जन्मेगा, जन्मा है? यह केवल कल्पना नहीं तो क्या है? कभी-कभी व्यक्ति अनहोनी कल्पनाओं के तार बुनकर उसके जाल में स्वयं ऐसा फंस जाता है कि उससे निकलना मुश्किल हो जाता है। क्या करूं? कैसे उसे समझाऊं? इस आशा के कारण ही उसने विवाह न करने की, दूसरे को पति रूप में स्वीकार न करने की प्रतिज्ञा की है, क्या वह न्यायोचित प्रतिज्ञा है ? ओह!·····।

ऐसे विचारों में उलझी हुई सारसिका ने निराश होकर निःश्वास छोड़ा। चित्रदर्शन के लिए नगर के हजारों नर-नारी आए थे। सभी ने चित्रांकनों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी····· ये सारे चित्र उनके मनों को भा गए थे····· परन्तु जिनके लिए यह आयोजन किया था, उनके दर्शन तो हुए ही नहीं। सारसिका ने मन ही मन सोचा—'संभव है, तरंग के पूर्वभव का पति यहां आया हो और चित्रों को देखकर उसे पूर्वजन्म की स्मृति न हुई हो। अब क्या किया जाए?'

सारसिका अत्यंत निराश होकर राजमार्ग की ओर देखने लगी·····

वह चौंकी। उसने देखा पांच-सात युवकों की एक टोली बाहर घूम कर घर लौटती हुई लोकगीत की धुन में कुछ गुनगुनाती हुई इसी ओर आ रही है·····

एक युवक कह रहा था—'पद्म! बाहर के उपवन में कार्तिक ने मुझे बताया था कि नगरसेठ के बाहरी भवन में अद्भुत चित्रकक्ष का आयोजन किया गया है··· देख, सामने दीपमालिकाओं की जगमगाहट में कुछ चित्र यहां से दीख रहे हैं····'

सभी चित्रकक्ष के निकट आए..... सभी का मन भीतर जाकर चित्रावलोकन करने का हुआ। सभी भीतर आए और चित्रों को देखकर मुग्ध बन गए।

एक मित्र ने कहा–'ओह! चित्र कितने सजीव हैं।'

एक मित्र ने कहा–'ओह! पद्म इस ओर तो देख..... पारधी युवक कितना सशक्त, सुडौल और सुंदर दिखाई देता है..... लगता है..... यह चित्रगत पारधी नहीं, जीवन्त व्यक्ति खड़ा है।'

इस प्रकार मित्र चित्र देखते-देखते बतिया रहे थे..... और पद्मदेव ने जब चक्रवाक के वध का चित्र देखा तब उसके समग्र ज्ञानतंतु झनझना उठे..... उसने सोचा, यह सरोवर, यह वनप्रदेश, यह हाथी, यह पारधी..... ओह! यह सारा मैंने कहीं देखा है..... कहां देखा है..... कब देखा है..... वह इसी बीच में गहरा उतरने लगा।

उसी समय उसकी दृष्टि चक्रवाक और चक्रवाकी के प्रणयप्रसंग के चित्र पर पड़ते ही वह कांप उठा..... हृदय का अंधकार दूर होने लगा और पूर्वजन्म की स्मृति का हल्का-सा स्पंदन होने लगा।

दूर खड़ी सारसिका पद्मदेव को स्थिर दृष्टि से देखती रही..... पद्मदेव के आनन पर उभरने वाली परिवर्तन की रेखाओं को वह ध्यानपूर्वक देखने लगी। उसने फिर पद्मदेव का निरीक्षण किया। कछुए के पैर जैसे उसके कोमल पैर थे। पैरों की पिंडलियां पुष्ट और गोलाकार थीं..... जंघाप्रदेश बलिष्ठ लग रहा था..... छाती मांसल और विशाल थी..... आनन अत्यंत सुंदर..... कामदेव जैसा रूप..... आंखों में तेज..... लग रहा था, मानो पृथ्वी पर चन्द्रमा हो.....।

सारसिका को प्रतीत हुआ..... यह युवक सभी प्रकार से सुंदर और श्रेष्ठ है..... यह तरंग के योग्य है.....।

इतने में ही एक मित्र ने पद्मदेव की ओर देखते हुए कहा–'पद्म! तू स्वयं कलाकार है, कला का पारखी है..... मौन क्यों हो गया? इधर देख तो सही..... दो तटों के बीच बहती हुई तरंगवती चंचल गंगा का कैसा सजीव चित्रण हुआ है..... कमलों से भरे-पूरे इस सरोवर को देख..... छोटे-बड़े वृक्षों वाले इस वनप्रदेश की ओर दृष्टि डाल..... वाह! वाह! चित्रकार ने अपने चित्रों में सभी ऋतुओं का सजीव दर्शन किया है..... देख, यह शरद् ऋतु का दृश्य है..... यह वसन्त ऋतु का..... प्रत्येक ऋतु की विशेषता उन-उन चित्रों में चित्रित है।'

चक्रवाक की प्रणयकेलि और मस्तीभरे चित्र की ओर दृष्टि डालते ही पद्मदेव बोलते-बोलते रुक गया..... कुछ क्षणों बाद बोला–'मित्र! प्रेमरूपी बंधन से बंधे हुए तथा स्नेह के पिंजरे में कैद यह चक्रवाक दंपती जीवन के समग्र प्रवाह में केवल प्रेम और एकतानता के प्रतिरूप ही बने हुए हैं। इस चित्र में, सरोवर के साथ तैरते से प्रतीत होते हैं और इस चित्र में रेतीले किनारे पर दोनों एक साथ

विश्राम करते हुए दीख रहे हैं····· देख, इस चित्र में दोनों किस प्रकार से आलिंगनबद्ध हो रहे हैं····· आकाश में भी साथ-साथ उड़ते हैं····· कमलवन में साथ-साथ घूमते हैं····· कहीं एक क्षण के लिए विलग नहीं होते····· यह प्रेम····· जीवन का यह मधुर उल्लास कितना महान् है?'

'अब तेरी कला-विवेचन की शक्ति खिल उठी है।' एक मित्र ने पद्म से कहा।

किन्तु पद्मदेव अवाक् बना रहा····· चक्रवाक को तीर लगा है····· उसकी पांख टूट गई है····· वह भूमि पर लुढ़क गया है और चक्रवाकी वेदनाभरी व्यथा भोग रही है····· अगले चित्र में चक्रवाकी मृत्यु को प्राप्त अपने प्रियतम के शरीर पर पांखें पसार कर रुदन कर रही है····· अगले चित्र में पारधी चक्रवाक के मृत शरीर को चिता पर रख रहा है····· और अगले चित्र में अथाह वेदना से व्यथित चक्रवाकी उस सुलगती चिता में झंपा ले रही है।

इन दृश्यों को देखते ही पद्मदेव की आंखों में अंधियारी छा गई····· उसके अन्य मित्र चित्रों को देखने में तल्लीन हो रहे थे····· परन्तु सारसिका उस युवक के भाव-परिवर्तनों को सूक्ष्मता से देख रही थी·····

और·····

दूसरे ही क्षण पद्मदेव बोल उठा····· 'ओह·····!'

पांचों मित्रों ने उसकी ओर देखा····· इतने में ही पद्मदेव मूर्च्छित होकर गिरने लगा। पास में खड़े उसके मित्र ने उसे संभालने का प्रयत्न किया। परन्तु संतुलन न रह पाने के कारण दोनों भूमि पर गिर पड़े।

मित्रों ने सोचा कि पद्मदेव की मूर्च्छा का मूल कारण ये चित्र बने हैं। वे पद्मदेव को चित्रकक्ष से उठाकर बाहर खुली हवा में ले आए।

यह देखकर सारसिका ने सोचा–'संभव है यह मूर्च्छित युवक पूर्वभव का चक्रवाक हो! यह सोचकर वह भी चित्रकक्ष के बाहर आई और मूर्च्छित युवक से कुछ दूरी पर खड़ी रही।'

मित्रों ने पद्मदेव की मूर्च्छा को तोड़ने का प्रयत्न किया····· उस प्रयत्न में सहयोग देने के लिए सारसिका बोली–'भाई! मैं अभी जलपात्र लेकर आती हूं।' यह कहकर वह दौड़ती हुई भवन में गई और कुछ ही क्षणों में जलपात्र लेकर आ गई।

मित्रों ने सारसिका का आभार माना। मूर्च्छित पद्मदेव के आनन पर ठंडे जल के छींटे दिए और कुछ ही क्षणों में पद्मदेव ने आंखें खोलीं। इधर-उधर देखा और जागृत हो बोला–'मेरी प्रियतमा! मेरी प्रेरणा·····? तेरी श्यामल चमकीली आंखें कितनी सुंदर थीं····· अब तू कहां है? एक समय हम गंगा के किनारे क्रीड़ा करते थे तब तू मेरे स्नेह का भंडार थी····· किन्तु आज मैं तेरे बिना पाषाण

हो गया हूं..... जीवनभर तू मेरे चरणों का अनुसरण करती रही.....।' लज्जा, संकोच आदि को छोड़कर पद्मदेव आंसूभरे नयनों से विलाप करने लगा। उसके एक मित्र ने कहा–'अरे पद्मदेव! ऐसी पगली बातें क्यों कर रहा है? क्या तू अभी तक होश में नहीं आया?'

पद्मदेव ने मित्र की ओर देखकर कहा–'मैं अभी सामान्य दशा में हूं।'

'तो फिर तुझे क्या हो गया है कि तू अनर्गल प्रलाप कर रहा है। तेरे प्रलाप को सुनकर हम कुछ भी नहीं समझ पा रहे हैं..... तेरे तो कोई प्रियतमा है नहीं..... गंगातट की बात क्यों कर रहा है?'

'मित्रो! मैं विक्षिप्त अवस्था में नहीं हूं। मैं स्वप्नाच्छादित भी नहीं हूं। तुमको मैं सारा वृत्तान्त बताऊंगा..... परन्तु तुम सब उस वृत्तान्त को अपने तक ही सीमित रखना। चित्रकक्ष में चक्रवाकों की जिस कथा का चित्रांकन किया गया है, वह मेरे पूर्वजन्म की सत्य घटना है।'

'विक्षिप्त नहीं तो और क्या! यह कैसे हो सकता है?' दूसरे मित्र ने कहा।

सारसिका खड़ी-खड़ी ये सारी बातें हर्षपूरित हृदय से सुन रही थी।

पद्मदेव ने अपने मित्रों के समक्ष अपने पूर्वजन्म का समग्र वृत्तान्त कह सुनाया। अन्त में वह बोला–'मित्रो! पारधी के बाण से मेरे प्राणपखेरू तो उड गए थे..... किन्तु मेरी प्रिया मेरी चिता में झंपापात कर कैसे मरी–यह बात चित्रों को देखने के पश्चात् ही मैं जान पाया हूं। यह दृश्य देखते ही मुझे जातिस्मृति ज्ञान हुआ..... हृदय धड़कने लगा..... मैं मूर्च्छित हो गया..... इन चित्रों को देखकर ही मुझे अतीत याद हो आया..... चक्रवाक-जीवन के सारे संस्मरण स्मृतिपटल पर नाचने लगे..... मित्रो! मैंने पूर्वजन्म की सारी बातें बतला दी है। मैंने यह भी निश्चय कर लिया कि इस जन्म में पूर्वजन्म की पत्नी के सिवाय अन्य किसी स्त्री से पाणिग्रहण नहीं करूंगा..... मैं नहीं कह सकता वह चक्रवाकी मेरे साथ भस्मसात् होकर कहां जन्मी होगी..... और मैं यह भी नहीं कह सकता कि वह मनुष्य जीवन में आई हो..... परन्तु मेरी अन्तर् आत्मा कहती है कि वह मुझे अवश्य मिलेगी..... ओह! ओह!..... एक बात और मैं जानना चाहता हूं कि इन चित्रों का चित्रांकन किसने किया है ? मुझे प्रतीत होता है मेरे विगत जन्म की मेरी प्रियतमा ने ही ये चित्र चित्रित किए हैं..... उसके बिना ऐसी सत्य घटना चित्रित नहीं हो सकती अथवा उसके द्वारा सूचना प्राप्त कर किसी महान् चित्रकार ने ये चित्रपट तैयार किए हों! अन्यथा ऐसे जीवन के संस्मरणों का कौन-कैसे चित्रांकन कर सकता है? मैं चक्रवाक के रूप में अपनी प्रिया के साथ इस प्रकार रहा था, यह कोई प्रत्यक्ष रूप से देखे बिना कौन-कैसे कल्पना कर सकता है?'

यह सारी चर्चा सुनकर सारसिका वहां से चलकर अपने चित्रकक्ष में आ

गई। उसके मन में पूरा विश्वास हो गया कि यह युवक ही तरंगलोला का पूर्व जीवन का जीवनसाथी है।

कुछ ही क्षणों के बाद एक मित्र चित्रकक्ष में आया और सारसिका की ओर देखकर विनम्र स्वरों में बोला—'बहिन! ये चित्र कलात्मक हैं, सुंदर हैं। क्या आप बताएंगी कि यह चित्रांकन किसकी निपुण अंगुलियों से हुआ है।'

सारसिका बोली—'नगरसेठ की कन्या और मेरी सखी तरंगलोला ने अपने हाथों से ये चित्रांकन किए हैं और उसकी योजना के अनुसार हमने ये चित्रपट्ट यहां प्रदर्शित किए हैं।'

'क्या देवी तरंगलोला की ये कलाकृतियां हैं?'

'हां भाई····· ये सारे चित्र काल्पनिक नहीं हैं। यथार्थ हैं। तरंगलोला के मन में एक सत्य उभरा और उसने ये सारे चित्र अपने पूर्वभव के पति को खोजने के लिए तैयार किए हैं।'

'सत्य कह रही हो?'

'असत्य क्यों बोलूं?'

'आभार!' कहकर मित्र पुनः पद्मदेव के पास आ गया और प्रसन्नभाव से बोला—'पद्म! अब चिंता मत करो····· पूर्वजन्म की तेरी प्रिया मिल गई है····· वह अन्य कोई नहीं, किन्तु अपने नगरसेठ ऋषभसेन की प्रिय पुत्री तरंगलोला है। ये चित्र काल्पनिक नहीं हैं। हृदय में जागृत यथार्थ के आधार पर चित्रित हुए हैं, और वह भी अपने पूर्वभव के पति को खोजने के लिए यह उपक्रम किया है।'

यह सुनकर पद्मदेव की प्रसन्नता खिल उठी····· वह विकसित कमल जैसा बन गया····· वह बोला—'मित्रो! अब मेरे जीवन में आनन्द उभरेगा····· गत जन्म की मेरी प्रिया चक्रवाकी इसी नगर में नगरसेठ की कन्या के रूप में अवतरित हुई है····· यह····· कहते-कहते पद्मदेव विचारमग्न हो गया और फिर विषादभरे स्वरों में बोला—'परन्तु नगरसेठ राजा के मित्र अति धनाढ्य होने के कारण अहंकार के मद से ग्रस्त हैं····· मैं जानता हूं कि उनकी कन्या की मांग लेकर अनेक श्रीमन्त आए थे, परन्तु नगरसेठ ने उनकी मांग को अस्वीकार कर दिया था। तो फिर मेरी तो गिनती ही क्या है ? मित्र! एक बार प्रियतमा की खोज हो जाने पर जब वह प्राप्त नहीं हो सकेगी तो मेरा जीवन अत्यन्त वेदनामय बन जाएगा।'

दूसरा मित्र बोला—'परन्तु हमें ऐसा अनुमान क्यों करना चाहिए? उसकी शोध हो चुकी है, यह कोई सामान्य बात नहीं है। तेरी प्रियतमा ने भी तेरी खोज करने के लिए ही ये चित्रांकन किए हैं। जो है, उसको प्राप्त किया जा सकता है, उसकी प्राप्ति का मार्ग ढूंढा जा सकता है। अभी तक तरंगलोला की सगाई नहीं हुई है, इसलिए सगाई की बात की जा सकती है तथा अन्यान्य उपायों से भी उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा सकेगा। तू निश्चिन्त रह।'

समय अधिक हो चुका था। सभी मित्र वहां से अपने-अपने घर की ओर प्रस्थित हुए।

सारसिका भी धीरे से उस मित्रमंडली के पीछे चल पड़ी। क्योंकि उसने यह निश्चय कर लिया था कि पद्मदेव ही तरंगलोला के पूर्वजन्म का पति है, इसलिए वह पद्मदेव के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करना चाहती थी।·····वे कहां रहते हैं? उनकी स्थिति कैसी है? उनकी पारिवारिक स्थिति कैसी है?— यह जानने के लिए वह गुप्त रूप से उनके पीछे-पीछे जाने लगी।

मार्ग में किसी प्रकार का भय तो था ही नहीं।

इधर पौषध व्रत में लीन तरंगलोला को आधी रात तक नींद नहीं आई। उसमें चित्रांकन की समायोजना का परिणाम जानने की उत्कंठा थी। विचारों में चक्कर लगाती हुई वह पश्चिम रात्रि में निद्राधीन हुई थी।

दर्दभरे मन को स्वच्छ नींद भी नहीं आती····· अनेक प्रकार के स्वप्नों से वह घिर गई थी। प्रातःकाल के समय उसने एक स्वप्न देखा कि वह एक पर्वत पर चढ़ रही है, मार्ग कठिन है, फिर भी वह उल्लासपूर्वक पर्वत के शिखर पर पहुंच गई और वहां प्रसन्नतापूर्वक घूम रही है।

ऐसे विचित्र स्वप्न को देख वह जागृत हुई। उसने देखा कि परिवार के अन्यान्य सदस्य प्रतिक्रमण की पूर्व तैयारी कर रहे हैं·····

सुनन्दा ने पुत्री को चौंकी हुई जानकर पूछा—'क्यों तरंग? अचानक कैसे चौंक पड़ी?'

'नहीं, मां! मैंने एक स्वप्न देखा और·····'

'स्वप्न?'

'हां, स्वप्न में मैं एक दुर्गम पर्वत पर चढ़ गई थी और उसके शिखर पर उल्लासभरे हृदय से नाच रही थी·····इस स्वप्न का फल क्या होगा?'

'बेटी! स्वप्नशास्त्र के अनुसार तेरा यह स्वप्न किसी भावी शुभ की सूचना देता है। स्वप्न से मनुष्य का जीवन-मरण, सद्भाग्य-दुर्भाग्य, हानि-लाभ जाने जा सकते हैं····· बुरे स्वप्न का फल भी बुरा ही होता है। तेरा स्वप्न उत्तम है····· तू जाग ही गई है तो अब प्रतिक्रमण की तैयारी कर·····'

'जी·····' कहकर तरंगलोला प्रतिक्रमण करने उद्यत हुई।

१४. आशा का तन्तु

सूर्योदय हो गया।

प्रतिक्रमण कर, पौषध संपन्न कर सभी आराधना कक्ष से बाहर आए। संतों के दर्शनार्थ गए, फिर पारणा करने से पूर्व दतौन करने बैठ गए।

तरंगलोला दतौन करने बैठी। परन्तु उसके नयन सारसिका को ढूंढ रहे

थे····· वह दिखाई नहीं दे रही थी। वह कहां गई होगी? संभव है मेरे प्रयत्न को निष्फल होते देखकर वह निराश होकर घर चली गई हो! परन्तु ऐसा हो नहीं सकता। वह मुझसे मिले बिना कभी जा नहीं सकती।

इन विचारों में खोयी हुई तरंगलोला दतौन कर रही थी, इतने में ही एक दासी ने आकर कहा–'उस भवन से सभी चित्रपट्टों को सावधानीपूर्वक लाकर आपके निजी खंड में रख दिए हैं।'

'सारसिका क्या कर रही है?'

'ज्ञात नहीं····· वे तो भवन में आई ही नहीं····· पश्चिम रात्रि में वे एक बार जलपात्र लेने आई थीं····· फिर मैंने उन्हें नहीं देखा·····'

'जलपात्र लेने? वह तो रात्रि में जलपान करती ही नहीं।'

'किस लिए जलपात्र ले गई मैं नहीं जानती····· मैं तो बाहर सो गई थी····· पानीपात्र की आवाज हुई और मेरी नींद टूटी। मैंने देखा, वे जलपात्र लेकर जा रही हैं।'

'फिर वह भवन में आई ही नहीं?'

'हां, वे भवन में नहीं आईं।'

'तू चित्रपट्टक लेने गई थी तब सारसिका चित्रकक्ष में थी या नहीं?'

'नहीं थी देवी!'

'क्या?'

'मैंने चौकीदार से पूछा तब उसने कहा कि सारसिका प्रातःकाल राजमार्ग पर जा रही थी।'

'अच्छा·····'

दासी चली गई।

तरंगलोला के हृदय में सारसिका कहां गई होगी, यह प्रश्न चिन्ताकारक बन गया।

दंतधावन होने के बाद तरंगलोला परिवार के साथ पारणा करने गई।

भूख होने पर भी चिन्ता के कारण रुचि नहीं होती। तरंग का ध्यान सारसिका में था····· रात को क्या हुआ होगा? क्या गत जन्म का पति आया था? क्या मेरी योजना निष्फल गई? क्या उनको जातिस्मृति नहीं हुई?

ज्यों-त्यों पारणे से निवृत्त होकर सभी अपने-अपने कक्ष में चले गए। तरंगलोला चित्रों वाले खंड में गई। उसने देखा, सभी चित्र व्यवस्थित ढ़ंग से रखे हुए हैं····· परन्तु उसने एक निःश्वास छोड़ा····· क्या मेरा यह प्रयत्न बालुका से तेल निकालने जैसा व्यर्थ सिद्ध होगा? ओह! सारसिका कब आएगी? इस प्रकार अनेक प्रश्नों के वर्तुल में फंसी हुई तरंगलोला विचारमग्न होकर एक ओर बैठ गई····· उसने वातायन की ओर देखा····· अरे! दिन का पहला प्रहर बीत चुका

है····· सारसिका अभी तक····· वह उठ कर राजमार्ग की ओर देखने वातायन के पास गई·····।

उसी समय सारसिका ने खंड में प्रवेश किया। सखी को विचारमग्न देखकर बोली–'तरंग·····!'

'ओह, सारसिका! अब तक तू कहां गई थी?'

'तेरे कार्य में ही गूंथी हुई फिर रही थी।'

'मैं पूरी रात जागती रही यह तो तू जानती ही है? परन्तु तेरा श्रम और मेरा जागरण सफल हो गया····· तेरा प्रियतम मुझे मिल गया·····'

ये शब्द सुनते ही जैसे सूर्य की प्रथम किरण का स्पर्श पाकर कमल खिल उठता है, वैसे ही तरंगलोला के वदन से सारी निराशा नष्ट हो गई और आशा की एक किरण फूट गई। वह तत्काल सारसिका से लिपट गई और बोली–'सखी! तू मुझे पूरी बात बता····· मुझे केवल बहकाने के लिए तो नही कह रही है?'

'तरंग! क्या तू मुझे इस बात में असत्य मानती है?'

'सारसिका! मुझे क्षमा कर····· चल, हम शयनकक्ष में चलते हैं····· रात में जो बीता वह मुझे विस्तार से बता' कहकर तरंगलोला सारसिका को लेकर शयनकक्ष में गई।

सारसिका ने अथ से इति तक सारी बात कही और अन्त में कहा–'फिर मैं तेरे पूर्वभव के पति का परिचय पाने उसके पीछे-पीछे गई। जब मुझे उनका पूरा परिचय प्राप्त हो गया तब मुझे बहुत प्रसन्नता हुई····· सखी! तू वास्तव में ही अत्यन्त भाग्यशालिनी है····· क्या कहूं तेरे भाग्य का!····· एक तो तेरे पूर्वभव का पति अति सुन्दर है·····शरद् के चन्द्र जैसा मनोहारी और अत्यंत स्नेहिल है।'

'अरे! मुझे उसके कुल, नाम आदि का परिचय तो बता·····।'

'तरंग! उतावली मत हो····· हर्ष के आवेश में मैं भूल जाती हूं····· इसी नगरी के सामुद्रिक व्यापारी धनदेव सेठ को तू जानती है? अपार संपत्ति के स्वामी····· इनका सामुद्रिक व्यापार दूर-दूर देशों तक है····· यह अनेक जहाजी बेड़ों का स्वामी है····· इनके पुत्र का नाम है पद्मदेव····· और वही तेरे पूर्वभव का प्रियतम है। घर के सभी सदस्य इनके प्रति अत्यंत स्नेह और प्रेम रखते हैं। इनकी मित्र मंडली भी सौम्य और शालीन है। मित्रमंडली में तुझे प्राप्त करने का विमर्श भी चला है। सब ज्ञात कर मैं वहां से मुड़ी और मार्गगत अपने घर पहुंची। वहां प्रातःकर्म से निवृत्त होकर सीधी तेरे पास आई हूं। बता, अब तुझे क्या जानना शेष है?'

'ओह! सखी! तूने मेरे पर महान् उपकार किया है····· परन्तु·····'

'क्या?'

'वे मुझे प्राप्त करने का कब प्रयत्न करेंगे?'

'सखी! ऐसी बातों में तुझे धैर्य रखना चाहिए। पद्मदेव और उसके मित्र परस्पर विचार-विमर्श करेंगे। फिर धनदेव सेठ के कानों तक बात पहुंचायेंगे और तत्पश्चात् तेरे पिता से मिलने आएंगे..... ऐसा मुझे प्रतीत होता है..... क्योंकि पद्मदेव से मिलने के लिए तू जितनी आतुर हो रही है, उतनी ही आतुरता मुझे पद्मदेव के नयनों में दीख पड़ी..... अब तू प्रतीक्षा कर..... अधीर मत हो।'

'सखी! अधैर्य का प्रश्न नहीं है। प्रश्न है वर्षों की विरह-व्यथा का.....'

'मैं समझती हूं..... परन्तु तरंग! रसशास्त्री कहते हैं कि विरह एक तपस्या है..... विरहाग्नि में जलते हुए हृदय का प्रेम कंचन जैसा शुद्ध होता है..... धैर्य के बिना व्यथा जीर्ण नहीं होती..... तू यह भी तो सोच, यदि जातिस्मरणज्ञान नहीं हुआ होता तो.....?'

तरंगलोला बोली–'सारसिका! मैं सब समझती हूं..... मेरी कुल मर्यादा का भी मुझे ख्याल है..... हृदय में छुपी हुई विरह-व्यथा को साकार बनाने के लिए मैंने चित्रांकन तैयार किए थे..... परन्तु प्रियतम का अता-पता ज्ञात हो जाने पर क्या कोई नारी धैर्य रख सकती है? फिर भी मैं अधीर नहीं बनूंगी.....'

सारसिका ने कहा–'तू समझदार और ज्ञानी है। कुछ दिनों तक धैर्य रखना..... अभी मैं घर जा रही हूं..... तीसरे दिन फिर मिलूंगी.....।'

'सखी! तेरे बिना मैं एक पल भी नहीं रह सकती।'

'मेरा जाना आवश्यक है। आज नगरी का एक परिवार मुझे देखने आ रहा है..... मां तो मुझे अभी यहां आने ही नहीं दे रही थी..... किन्तु शीघ्र ही लौटने का वादा कर ज्यों-त्यों यहां आ पाई हूं..... क्योंकि रात्रि की घटना तुझे न बताऊं तब तक मेरा मन भी कैसे स्थिर रह सकता है?'

'तुझे देखने के लिए? क्यों?'

'कन्या को देखने क्यों आते हैं?'

'कौन है वह भाग्यशाली?'

'यह तो मैं नहीं जानती..... परन्तु इसी नगरी का एक मध्यम परिवार है..... मैंने अपनी भाभी के मुंह से सुना है कि परिवार बहुत बड़ा नहीं है..... तीन भाई, दो बहिनें और माता-पिता..... इनमें बड़ा भाई विधुर है..... मेरे पिता ने इसी को पसन्द किया है मेरे लिए। सहज स्वरों में सारसिका ने बताया।'

'नहीं, सखी! विधुर के साथ तेरा विवाह क्यों? तू मात्र सौन्दर्य की ही स्वामिनी नहीं है, तेरे में तेजस्विता भी है, तू पूर्ण संस्कारी भी है..... और संभव है विधुर की अवस्था भी तेरे से अधिक होगी.....दोनों में सामंजस्य कैसे.....?'

'यह तो मैं नहीं जानती! आज मैं देख लूंगी।'

'यदि अधेड़ वय का होगा तो?'

'मेरी इच्छा के विरुद्ध मां अपनी सहमति नहीं देगी.....'

'उनका व्यवसाय क्या है?'

'सुना है कि एक छोटी-सी दुकान है..... परिवार का गुजारा हो सके उतनी ही आय है।'

'अरे रे! तू संकोच मत करना। स्पष्ट इन्कार कर देना। ऐसे सामान्य परिवार में तेरी भावनाओं का पोषण कैसे होगा? तेरी आशाएं, ऊर्मियां और उमंगें–सारी चुक जाएंगी।' तरंगलोला ने कहा।

विलंब होने के कारण सारसिका ने सखी से विदाई ली और घर की ओर चल दी।

तरंगलोला भी मां के पास चली गई।

रात होते ही तरंगलोला ने सोचा–पद्मदेव नाम तो बहुत प्यारा है..... परन्तु एक बार मैं उन्हें देख लूं तो फिर उनके स्मरण से दिन बिताना सहज हो जाएगा..... सारसिका के कहने के अनुसार वे धनाढ्य हैं, अति सुंदर और आरोग्यवान् हैं। मैं उनको कब देख पाऊंगी?

तीसरे दिन सारसिका आ गई..... सखी को देखते ही तरंगलोला प्रसन्न हो गई और सखी को लेकर अपने निजी खंड में चली गई।

खंड में जाने के बाद सारसिका ने पूछा–'तरंग! क्या धनदेव सेठ आए थे?'

'कोई नहीं आया..... मेरा मन तो विचारों के भंवर में फंस गया है..... एक बार पूर्वभव के पति को देख लूं तो फिर उनकी स्मृति में दिन बिता सकती हूं..... अच्छा तू अपनी बात तो बता..... मेरा मन तेरे प्रश्न पर पागल हो गया है।' तरंगलोला ने कहा।

'मेरा प्रश्न तो समाहित हो गया।' हंसते हुए सारसिका ने कहा।

'विधुर के साथ विवाह निश्चित हो गया?'

'नहीं, मेरी भाभी को और माताजी को वर पसन्द नहीं आया.....'

'तूने भी देखा था.....।'

'हां..... चालीस वर्ष का वीर पुरुष है..... उसके तीन बालक हैं..... मां को पसन्द आ जाता तो मुझे बिना संतान पैदा किए ही मातृत्व का लाभ मिल जाता..... परन्तु भाग्य के बिना ऐसा सुख मिलता नही.....।' व्यंग्यभरे स्वरों में सारसिका ने कहा।

'तेरी बात समझ में नहीं आती। क्या वह तुझे पसन्द आ गया था?'

'यह तो मैं कैसे बता सकती हूं, क्योंकि मां ने और भाभी ने यह प्रश्न मेरे तक आने ही नहीं दिया।' कहकर सारसिका हंस पड़ी।

'ठीक है..... तू निश्चिन्त हो गई.....' तरंगलोला बोली।

इधर पद्मदेव ने कल ही अपने मित्रों के साथ मंत्रणा की थी। एक मित्र ने *कहा–'नगरसेठ की कन्या के साथ सगाई करने की बात को लेकर तेरे पिताश्री*

शीघ्रातिशीघ्र वहां जाएं, यही उतम मार्ग है..... इसलिए तुझे अपने पिता को कहना चाहिए.....।'

'किन्तु मैं कैसे कह सकूंगा? माता-पिता के समक्ष ऐसी बात करना उचित नहीं है। हमें ऐसा कोई उपाय करना चाहिए कि मेरे पिताश्री को सारी बात ज्ञात हो जाए।' पद्मदेव ने कहा।

धनदेव सेठ को सारी बात कैसे बताई जाए, इस विषय में काफी चर्चा हुई। अन्त में एक मित्र ने कहा—'मैं पहले पद्मदेव की माता से मिलूंगा, फिर आगे सोचूंगा।'

यह निर्णय कर सभी मित्र वहां से विसर्जित हुए। यह कल की घटना है और आज ही प्रातः होते-होते पद्मदेव का मित्र शेखर पद्मदेव की माता के पास आया।

पद्मदेव की माता धर्माराधना कर दंतघावन के लिए बैठी थी। इतने में ही शेखर वहां गया और नमन कर बोला—'मां! एक महत्त्व की बात लेकर आया हूं।'

'तो बोल बेटा!'

'तो आप भवन के ऊपरी कक्ष में पधारें।'

मां को आश्चर्य हुआ। वह जानती थी कि शेखर पद्मदेव का प्रिय मित्र है। मां उठी और शेखर के साथ भवन के उपवन की ओर गई। वहां एक आम्रवृक्ष के पास पहुंचते ही मां ने पूछा—'शेखर! क्या कहना चाहता है?'

'मां! इन दो दिनों में आपने पद्मदेव में कुछ देखा है?'

'हां बेटा! दो-तीन दिनों से पद्म कुछ अनमना-सा रहता है..... भोजन करने बैठता है तो पूरा भोजन नहीं करता..... न जाने उसके वदन से प्रसन्नता लुप्त कैसे हो गई ? मैंने कई बार पूछा, परन्तु वह कुछ नहीं कहता..... आज तो मैं राजवैद्य को बुलाने वाली थी.....।'

शेखर बोला—'मां! इसको प्रसन्न करने की औषध राजवैद्य के पास नहीं है..... हम चारों मित्रों ने बहुत उपायों के बाद इसके मन को जानने में सफलता प्राप्त की है।'

'उसके मन में क्या है? यहां तो कोई कमी नहीं है..... जो मांगता है वह मिल जाता है..... फिर.....'

'मां! कुछेक वस्तुएं ऐसी होती हैं जो मांगी नहीं जा सकती..... लज्जा की दीवार सामने आ जाती है। आप तो जानती ही है कि वह अब युवा हो गया है और हम चारों मित्रों में वह अकेला ही कुंआरा है। इसको अब विवाह के बंधन में बांधना आवश्यक हो गया है।'

'अरे भाई! इस वर्ष हमने दस लड़कियां उसे दिखाई, परन्तु वह नकारता रहा है, इसके पिता भी इस विषयक चिंता करते रहे हैं।'

'यह सब समुचित रूप से समाहित हो सकती है, यह मैं जानता हूं। यदि आप सहायक बनें तो कल ही पद्म के चेहरे पर प्रसन्नता फूट पड़ेगी·····'

'क्या है बता।'

'पद्मदेव के पिता नगरसेठ के घर जाएं और उनकी एकाकी लड़की तरंगलोला के साथ सगाई करने की बात कहें... बस, सारा प्रश्न समाप्त हो जाएगा।' शेखर ने जातिस्मृति की बात को गुप्त रखते हुए कहा।

'नगरसेठ की कन्या के साथ सगाई! क्या वे अपनी बात स्वीकार करेंगे?'

'मां! धनदेव सेठ नगरसेठ से सवाये हैं····· व्यापार, कीर्त्ति, यश आदि में ये किसी से न्यून नहीं है और पद्मदेव आपका एकाकी पुत्र है और तरंगलोला भी नगरसेठ की एकाकी पुत्री है।'

दो क्षण मौन रहकर मां बोली–'मैं आज ही पद्म के पिताजी से बात करूंगी। तू पद्म को कह देना कि वह उदास न रहे। उसकी इच्छा को पूरी करना माता-पिता का कर्त्तव्य है।'

शेखर को संतोष हुआ। वह मां को नमन कर सीधा पद्मदेव के कक्ष में गया।

मित्र की सारी बात सुनकर पद्मदेव के हृदय में आशा का तार झनझना उठा।

१५. तरंगलोला की मांग

धन, यश, कीर्त्ति, सुख आदि भाग्योदय से ही प्राप्त होते हैं। संसार में चार पुरुषार्थ हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें संसार के समस्त भौतिक और आध्यात्मिक आदर्श समाविष्ट हो जाते हैं। परन्तु इन चारों का विभाजन प्रकृति ने सुंदररूप से किया है।

अर्थ और काम भौतिक सुखों के घटक हैं। सांसारिक सुख की कोई भी वस्तु इनसे अलग नहीं है····· इन दोनों की प्राप्ति भाग्य पर आधारित है।

धर्म और मोक्ष–ये दोनों तत्त्व भाग्य से परे हैं अर्थात् ये पुरुषार्थ के बिना प्राप्त नहीं होते। शाश्वत सुखों की प्राप्ति के लिए जन्म, जरा, व्याधि आदि पर विजय पाने के लिए भाग्य के भरोसे नहीं रहा जा सकता। पुरुषार्थ के बिना ये तत्त्व प्राप्त नहीं हो सकते।

कौशांबी नगरी में अनेक धनाढ्य व्यक्ति रहते थे। नगरसेठ ऋषभसेन की संपत्ति अपार मानी जाती थी। उनके बाद गणना में एकमात्र नाम आता था धनदेव सेठ का।

धनदेव व्यापार में अत्यंत कुशल था। उसका भाग्य ऐसा था कि वह जो करता वह अच्छा ही होता। उसके पास भी अपार संपत्ति थी और स्थान-स्थान पर

कारोबार चल रहा था। उसने अपनी संपत्ति का सदुपयोग करने के लिए अनेक स्थानों पर धर्मशालाएं, प्याऊ आदि का निर्माण कराया था। उसके हृदय में धर्म के प्रति समादर था, परन्तु एक व्यापारी होने के कारण जहां कहीं व्यापार का सौदा होता, वहां बड़े से बड़ा खतरा लेने में भी वह कभी नहीं हिचकता था। आज तक भाग्य ने उसका साथ दिया था।

पत्नी की रात्रिकालीन बात सुनकर धनदेव ने कहा–'प्रिये! लड़की के पिता के पास सगाई की मांग करने जाने में कोई दोष नहीं है····· व्यवहार है। समान कुल गौरव वाले आपस में इस प्रकार का व्यवहार करते रहे हैं·····परन्तु·····।'

'परन्तु क्या?'

'नगरसेठ ऋषभसेन के समक्ष राजगृह के नगरसेठ ने अपने पुत्र के लिए तरंगलोला की मांगनी की थी, परन्तु ऋषभसेन ने उनकी मांग को नकार डाला था·····।'

पत्नी हंस पड़ी। उसने हंसते-हंसते कहा–'मैं जानती हूं····· परन्तु आप आन्तरिक बात नहीं जानते। नगरसेठ के आठ पुत्र हैं और केवल एक ही बेटी है। उसका लालन-पालन भी इन्होंने विशेषरूप से किया है। ऐसी सुंदर और सुशील कन्या को अपने से दूर रखने की इच्छा सेठ और सेठानी को न हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। इसीलिए वे बाहर से आने वाली मांगों पर ध्यान नहीं देते। आप तो इसी नगरी में रहते हैं। यश, कीर्त्ति और संपत्ति में आप नगरसेठ के बराबर हैं और पुत्र पद्म भी हजारों में एक जैसा है। मुझे विश्वास है कि नगरसेठ आपकी बात को मानेंगे। उसका सत्कार करेंगे।'

'मुझे वहां जाने में कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु एक प्रश्न है कि पद्म के मन में ऐसी इच्छा क्यों उभरी?'

'ऐसे प्रश्न करने से पूर्व आपको अपने यौवन के प्रारंभकाल की स्मृति करनी चाहिए। पद्म युवावस्था में है। संभव है उसने कहीं तरंगलोला को देखा हो अथवा मित्रों से उसके रूप-गुण के विषय में सुना हो। स्वाभाविक है कि पद्म के मन में तरंगलोला को अपनी पत्नी बनाने की भावना जागे।'

दो क्षण रुककर धनदेव ने कहा–'तुम अपनी नगरी के अरुणदत्त सेठ को जानती हो?'

'हां, जो करोड़पति हैं, वे ही तो? उनके दो पुत्र हैं····· कपड़े के बड़े व्यापारी हैं····· किन्तु दोनों पुत्र ऐसे हैं कि उनको देखने का मन ही नहीं होता····· वर्ण श्याम और दुबले-पतले। नगरसेठ ने अरुणदत्त की बात को हंस कर टाल दी थी, वह मैं जानती हूं। कोई भी माता-पिता अपनी सुन्दर कन्या का ऐसे व्यक्ति से विवाह नहीं करते।'

दो दिन बाद·····

धनदेव ने पत्नी की बात को स्वीकार कर नगरसेठ के भवन पर रथिक को रथ ले जाने की आज्ञा दी।

जब वे नगरसेठ के भवन पर पहुंचे तब नगरसेठ अपनी बैठक में आ गए थे..... धनदेव को आते देख वे उठे और बोले–'अरे धनदेव सेठ! आश्चर्य हो रहा है। पधारो..... पधारो.....।'

धनदेव ने नगरसेठ को प्रणाम किया। नगरसेठ ने पूर्ण सम्मान से धनदेव को अपने पास बिठाकर पूछा–'क्यों, सभी कुशल तो हैं?'

'धर्म के प्रताप से सब कुशलक्षेम है। आप सभी कुशल हैं?'

'हां, सभी पुत्र व्यवसाय संभालते हैं और मैं अभी निवृत्ति का जीवन जी रहा हूं..... आपके पधारने का उद्देश्य बताएं.....' नगरसेठ ने विनयपूर्वक कहा।

धनदेवसेठ को भवन में आए हुए जानकर सारसिका नगरसेठ के कक्ष के पास आकर ओट में खड़ी हो गई।

औपचारिक व्यवहार के संपन्न होने पर सेठ धनदेव ने नगरसेठ से कहा–'मैं आज विशेष प्रयोजन से यहां आया हूं। आप जानते ही हैं कि मेरे एक युवा पुत्र है.....'

'हां, हां..... मैंने उसको आते-जाते देखा था..... क्या वह कहीं दीर्घ सामुद्रिक यात्रा में प्रस्थान कर रहा है?'

'अभी तो नहीं जाएगा..... पद्मदेव संस्कारी और गुणवान् है। मेरे परिवार की यह इच्छा है कि आपके कन्यारत्न की सगाई उससे हो..... आपकी कन्या मेरे घर पुत्रवधू के रूप में आए..... हम एक ही नगर के वासी हैं, इसलिए सारी अनुकूलताएं रह सकती हैं।'

नगरसेठ ऋषभसेन का चेहरा विचारों की रेखाओं से आकीर्ण हो गया। वह कुछ क्षणों बाद बोला–धनदेव सेठ! मैं कन्या का पिता हूं और मेरी एकाकी कन्या देवकन्या जैसी है। मैंने उसके वर की खोज के लिए इस नगरी के योग्य युवकों को एक-एक कर विचार किया है। आपके घर का भी मैंने विचार किया था..... संपत्ति, प्रतिष्ठा और कुल-गौरव से आपका घर श्रेष्ठ है, इसमें कोई संशय नहीं है। आपका पुत्र भी गुणसंपन्न है। मुझे स्मृति है कि पद्मदेव संगीत के शौकीन हैं..... मेरी पुत्री तरंग को भी चित्रकला का शौक है.....।

धनदेव ने तब प्रसन्न स्वरों में कहा–'तो फिर आप मेरी मांग का सत्कार करें। इससे हम दोनों के परिवार अटूट बंधन में बंध जायेंगे..... और कन्यादान के समय आप जो देंगे वह मेरे लिए अधिक ही होगा.....।'

'धनदेव सेठ! देना-लेना मेरे लिए बड़ी बात नहीं है..... एकाकी पुत्री को पूर्ण संतुष्टि हो, यह मेरी भावना है। आपके घर के विषय में मैंने दूसरे ढ़ंग से भी सोचा है..... आप सामुद्रिक व्यापारी हैं..... लाखों सोनैया का व्यापार होता

है..... जब सार्थ लेकर जाते हैं तब घर लौटने में दो-चार वर्ष लग जाते हैं। आपका पुत्र भी इसी सामुद्रिक व्यापार का खिलाड़ी है, यह भी मुझे ज्ञात है..... परंतु इस प्रकार के व्यापार में चारित्र की विशुद्धि प्रायः रहती नहीं.....दास-दासियों के साथ दीर्घ समय तक रहना होता है.....जबकि सामुद्रिक व्यापारी की पत्नी को पति होते हुए भी वैधव्य का संन्यास भोगना होता है, रो-रो कर उसे दिन बिताने पड़ते हैं। पत्र लिखना, मेघ की भांति पति की प्रतीक्षा करना, विरह-वेदना से कृश होना यह सब सार्थवाह की पत्नियों के भाग्य में लिखा होता है। मेरे एक ही कन्या है। यदि मैं ऐसे घर में कन्या को ब्याहूं तो वह बेचारी यौवनकाल में केवल वेदना का ही उपयोग कर पाएगी..... इसलिए मैं आपकी मांग को स्वीकार करने में असमर्थ हूं।'

धनदेव जिस आशा के साथ आया था, वह सारी आशा टूट गई।

वह कुछ भी उत्तर न देकर उठा। नगरसेठ ने कहा–'धनदेव सेठ! मेरे सत्य-कथन को आप अन्यथा न लें..... बेटी के पिता को अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार के विचार सुनने-समझने पड़ते हैं..... अनेक बार कड़वे घूंट पीने पड़ते हैं। परन्तु कन्या के पिता को कन्या के जीवन को ध्यान में रखकर चारों दिशाओं से विचार करना होता है..... इसी एक कारण से मैंने आपकी मांग को अस्वीकार किया है.....।'

'आपका कथन उचित है..... धनदेव ने मन ही मन सोचा कि नगरसेठ को कह दूं कि पद्म सामुद्रिक व्यापार से विरत होकर अन्य व्यापार में लग जायेगा। परन्तु ऐसा कहना स्वयं की न्यूनता जाहिर करना होगा। यह सोचकर धनदेव शान्तभाव से, बिना कुछ कहे, जय-जिनेन्द्र कह चले गए।'

सारसिका अवाक् रह गई। वह दौड़ती हुई तरंगलोला के कक्ष में पहुंची। तरंगलोला खंड में नहीं थी। वह माता के पास ही बैठी थी। उसने सोचा था कि धनदेव सेठ आए हैं तो पिताजी माता को बुलाने किसी को भेजेंगे।

कुछ क्षणों बाद सारसिका माता के खंड में आई और तरंगलोला की ओर दृष्टिपात करती हुई बोली–'चल तरंग! हम दोनों उस चित्र के विषय में विचार-विमर्श करें।'

तरंगलोला समझ गई कि सारसिका कुछ समझकर आई है। वह खड़ी हुई, मां को नमन कर सारसिका के साथ अपने खंड में आ गई।

खंड में पहुंचकर सारसिका बोली–'गजब हो गया!'

'क्या? क्या धनदेव सेठ किसी दूसरे प्रयोजन से ही आए थे?'

'नहीं। वे पद्मदेव के लिए तुम्हारी मांग लेकर ही आए थे, परन्तु नगरसेठ ने अस्वीकार कर दिया।'

'क्यों? किसलिए? क्या पद्मदेव में कोई खामी है।'

'नहीं सखी! तेरे पिताजी ने धनदेव के घर के विषय में पहले ही चिन्तन कर रखा था..... किन्तु वे तुझे झूरती विरहिणी और पति होते हुए भी विधवा अवस्था में देखना नहीं चाहते। सामुद्रिक व्यापारियों की पत्नियों की यही दशा होती है और उन व्यापारियों का चारित्र भी कलंकित ही होता है, क्योंकि पत्नी के अभाव में वे प्रवास में दासियों के साथ क्रीड़ारत रहते हैं। ऐसे परिवार में सेठजी तुझे देना नहीं चाहते। वे किसी संस्कारी और गुणवान् गरीब व्यक्ति को भी पसंद कर सकते हैं। परन्तु धनदेव सेठ के घर को पसंद नहीं कर सकते।'

'ओह..... सखी! अच्छा होता मेरे पर वज्र आ गिरता। उसकी वेदना मैं हंसती-हंसती सहन कर लेती..... पूर्वभव में मैं उनके बिना एक क्षण भी नहीं रही तो अब इस मनुष्य भव में मैं मेरे प्रियतम के बिना कैसे जी सकती हूं ? मुझे तो एक आशंका भी होती है.....'

'क्या?'

'यदि उनको यह ज्ञात हो जाएगा कि नगरसेठ ने मांग स्वीकार नहीं की है तो वे अत्यधिक व्यथित होंगे और संभव है मेरे बिना एक क्षण भी जीवन जीना वे न चाहें और कुछ अनर्थ कर बैठें।' कहते-कहते तरंग रो पड़ी।

सारसिका बोली–'तरंग! इस प्रकार व्यथित होने से काम कैसे चलेगा? विपत्ति के समय बुद्धिबल से विपत्ति-निवारण का उपाय सोचना चाहिए..... विपत्तिकाल में धैर्य ही मित्र और सहयोगी होता है.....।' यह कहकर सारसिका ने अपने उत्तरीय के पल्ले से तरंग के आंसू पोंछे।

कुछ क्षणों तक मौन रहने के पश्चात् तरंगलोला बोली–'मेरे मन में एक बात उभरी है। तुझे मेरा एक काम करना होगा।'

'बोल, तेरे हित का जो कार्य होगा, वह मैं तत्काल संपादित करूंगी।'

'तो चल, हम चित्रकक्ष में चलती हैं। वहां जाकर मैं एक पत्र लिखकर दूंगी..... तू उसे मेरे प्रियतम तक पहुंचा देना।'

इतने में नगरसेठ घर आ पहुंचे। उन्होंने सुनंदा को सारी बात बताई और धनदेव की मांग को अस्वीकार करने का कारण भी बता दिया।

सारसिका को लेकर तरंगलोला चित्रखंड में गई।

सारसिका ने कहा–'तरंग! सोच-समझकर पत्र लिखना। बहुधा ऐसा होता है कि मनुष्य भावना के प्रवाह में बहकर कर्त्तव्य को भूल जाता है। कर्तव्य और भावना–दोनों उत्तम हैं..... किन्तु कभी कर्त्तव्य के वशीभूत होना होता है और कभी भावना के। तू चतुर है, इसलिए लिखने से पूर्व सब कुछ सोच लेना।'

'सारसिका! मैं कर्त्तव्य और भावना का सामंजस्य करूंगी।' कहकर तरंगलोला पत्र लिखने बैठी। उसने लिखा–

'मेरे पूर्वभव के प्रियतम चक्रवाक!'

आपकी छाया सदृश चक्रवाकी ने इसी नगरी के नगरसेठ ऋषभसेन के घर पुत्री के रूप में जन्म लिया है। और आप यह बात मेरे द्वारा प्रस्तुत चित्रांकनों से जान चुके हैं, यह मुझे ज्ञात हो गया है। मुझे यह भी पता लगा है कि आप मुझसे मिलने के लिए बेताब हैं और अभी तक न मिलने के कारण आप विषादग्रस्त भी हुए हैं। आपके मित्रों के माध्यम से आपके पिताश्री के कानों तक मेरे साथ सगाई की बात पहुंची है, ऐसा अनुमान लगा है। आज ही आपके पिताश्री मेरे पिताजी के पास मांग लेकर आए थे, परन्तु मांग स्वीकार नहीं हुई। मुझे इससे बहुत दुःख हुआ और संभव है आपको भी इससे खिन्नता हुई होगी। अब मेरी एक प्रार्थना है कि आप आवेश में किसी भी प्रकार का गलत कदम न उठायें..... यदि पूर्वजन्म के स्नेहबंधन का धागा अटूट है तो दोनों निराशा के अंधकार में फंसे होने पर भी मिलन के मार्ग की प्रतीक्षा करना ही समझदारी होगी। मैं एक क्षण भी आपके बिना रह नहीं सकती, ऐसी परिस्थिति के होने पर भी मिलन की आशा से आशान्वित हूं। इसलिए यदि पूर्वजन्म का स्नेह अटूट है तो दोनों के मिलन से पूर्व आप ऐसा कोई कदम न उठाएं जिससे स्नेह का बंधन टूट जाए। मैं जीवित हूं, इसीलिए कि पूर्व जन्मगत स्नेह बंधन अटूट है। मैं जीवित रहूंगी, इसीलिए कि दोनों का स्नेह जीवित रहे..... अधिक क्या लिखूं? यह पत्र मेरी प्रिय सखी सारसिका आपके पास ला रही है। वह आपको विस्तार..... से सारी बातें बताएगी..... आप निःसंकोचभाव से उसके साथ संदेश भेजेंगे।

मैं हूं आपकी तरंगलोला

पूर्वभव की प्रिय चक्रवाकी और इस भव की तरंगलोला

पत्र लिखकर तरंगलोला ने सारसिका को दिया। सारसिका ने पूरा पत्र पढ़ लिया। फिर तरंग ने उस पत्र को कमलपुट में रखा, उसको कमलतंतुओं से वेष्टित कर सारसिका को सौंपते हुए कहा-'सखी! भोजन का समय हो गया है, इसलिए तू भोजन से निवृत्त होकर वहां जाना। इतना याद रखना कि मैं स्नेह को जीवित रखने जी रही हूं..... तू उनको कहना कि हम एक-दूसरे को प्रेमालु के रूप में पहचान चुके हैं। अतः पुनः भव का विप्रयोग न हो, इतना धैर्य दोनों को रखना जरूरी है। शेष तू मेरी सारी बातें उन्हें बताएगी ही।'

सारसिका पत्र को अपने उत्तरीय के अंचल में बांधकर भोजन करने गई। भोजन से निवृत्त होकर मध्याह्न के समय सारसिका धनदेव सेठ के भवन की ओर चल पड़ी। वह भवन के मुख्य द्वार पर आई। वहां आठ प्रहरी बैठे थे। उसने सोचा–भीतर कैसे जाऊं? उसने एक प्रहरी के पास जाकर कहा–'छोटे सेठ भवन में हैं?'

'हां बहिन! भवन में ही हैं। वे पांच-सात दिनों से भवन के बाहर आते ही नहीं। तुम्हें क्या काम है?'

'मुझे उनसे मिलना है..... आप मुझे उनके पास पहुंचा दें।' सारसिका ने कहा।

रक्षक दो क्षण सारसिका की ओर देखता रहा..... उसे यह विश्वास हो गया कि स्त्री रूपवती होने पर भी संस्कारी और कुलीन लग रही है। तत्काल उसने एक दासी को बुला भेजा। फिर सारसिका से कहा–'तुम अजान लगती हो?'

'आपकी पहचान शक्ति श्रेष्ठ है..... मुझे आपके छोटे सेठ ने बुलाया था, इसलिए आई हूं.....'

रक्षक ने कहा–'परखने की शक्ति तो ठीक..... यहां आने वालों को मैं पहचानता हूं.....'

इतने में ही एक दासी भवन से बाहर आई और द्वार पर आकर खड़ी हो गई। रक्षक ने उस दासी से कहा-'यह बहिन छोटे सेठ से मिलना चाहती है। इसे वहां पहुंचा दो।'

दासी ने सारसिका को संकेत किया और उसे लेकर छोटे सेठ के कक्ष की ओर चल पड़ी।

भवन में प्रवेश करने के पश्चात् सारसिका ने देखा कि भवन अत्यन्त सुन्दर है..... समृद्ध है..... यदि यह घर तरंगलोला को मिलता है तो इसमें हानि क्या है..... बाधा केवल परदेशगमन की थी, इसका भी कोई न कोई समाधान हो ही सकता था..... पद्मदेव को परदेश न भेजने की शर्त रखने से भी काम बन जाता.....

इन विचारों में डूबती-उतरती सारसिका दासी के पीछे-पीछे भवन के तीसरी मंजिल पर गई..... एक कक्ष के पास जाकर दासी खड़ी रह गई..... खंड का द्वार खुला था। उस पर मखमली परदा टंगा हुआ था। दासी ने धीरे से सारसिका को कहा-'यह छोटे सेठ का कक्ष है। आप अंदर जाएं.....'

सारसिका परदा दूर कर भीतर गई। उसने देखा–रत्नालंकारों से शोभित पद्मदेव एक सुखासन पर बैठा है..... वह किसी विचार में मस्त है। उसके हाथ में एक चित्र है और वह उस चित्र को देखने में तल्लीन है.....

सारसिका अत्यधिक निकट आकर खड़ी हो गई। तब वह देख सकी कि पद्मदेव की आंख से एक अश्रुबिंदु निकल कर उस चित्र पर पड़ा है और सामने के एक आसन पर एक ब्राह्मण कुमार जैसा एक युवक बैठा है।

सारसिका ने पद्मदेव को नमन करते हुए कहा-'आयुष्मन् की जय हो।'

किन्तु पद्मदेव का मन उस चित्र में अटक गया था। उसने ऊपर दृष्टि नहीं की, किन्तु वह ब्राह्मण कुमार अपने दांत दिखाते हुए बोला-'मैं एक ब्राह्मण यहां बैठा हूं, फिर भी तूने पहले मुझे नमस्कार न कर इस शूद्र को नमस्कार किया है!'

सारसिका अत्यंत भयभीत हो गई..... अरे! मैं कहां आ गई? उसने

तत्काल ब्राह्मणदेव को नमस्कार किया..... उस समय उसके हाथ की चूड़ियां मानो हाथ से स्खलित होकर गिर पड़ेंगी, ऐसी स्थिति बन गई। वह विनम्र स्वरों में बोली–'महाराज! आपको भी नमस्कार।' इतना कहकर वह खड़ी होकर बोली–'मैं तो डर गई..... सर्प को देखकर जितनी घबराहट होती है, वैसी ही घबराहट हुई।'

'अरे! सुंदरी! तू मुझे सर्प कहती है?'

'क्षमा करें महाराज! मैंने आपको सर्प नहीं कहा है।'

'वाह! तू तो चालाक औरत है। मुझे सर्प कहकर भी मुकर जाती है। तुझे यह ज्ञात होना चाहिए कि मैं उच्चकुल का ब्राह्मण हूं। मेरे पिता हरित् गोत्र के काश्यप हैं। मैं छांदोग्य संप्रदाय का हूं। तू मुझे पहचान लें।'

सारसिका की धड़कन बढ़ गई। वह धूजने लगी। इतने में ही पद्मदेव का ध्यान चित्र से हटा और उसने ब्राह्मण कुमार को कहा–'अरे पाजी! अपरिचित युवती को तू सता रहा है। अपनी बड़बड़ाहट बंद कर। तू मूर्ख है। चला जा यहां से। क्यों आया मेरे खंड में?'

पद्मदेव की यह डांट-फटकार सुनकर वह ब्राह्मण युवक सारसिका की ओर घूरता हुआ खंड से बाहर चला गया।

सारसिका ने सुख की सांस ली।

पद्मदेव बोला–'ओह! सुंदरी। क्षमा करना। तुम कहां से आई हो? किस प्रयोजन से आई हो? तुम कौन हो?'

सारसिका ने प्रसन्न स्वरों में कहा–'कुलभूषण श्रेष्ठपुत्र! मैं एक संदेश लेकर आई हूं। नगरसेठ ऋषभसेन की देवकन्या तुल्य पुत्री तरंगलोला ने एक संदेश भेजा है। तरंगलोला ने जो चित्रांकन किए थे, उनकी सफल संयोजना से उसके मन में एक आशा की लहर उभरी है। पूर्वभव के स्नेहबंधन को और अधिक गाढ़ करने के लिए वह इस भव में आपका सान्निध्य चाहती है। आप अपना हाथ उसे दें। तरंगलोला ने एक संदेश भेजा है.....' यह कहकर सारसिका ने अपने उत्तरीय के अंचल में बंधे संदेश को पद्मदेव के हाथों में सौंपते हुए कहा–'कुमारश्री! संदेश का मर्म इस पत्र को पढ़कर आप समझ लें।'

इतना सुनते ही पद्मदेव की आंखों से अश्रुधारा बह चली। उसका हृदय कांप उठा। उनके हृदय में छिपे स्नेह को सारसिका देख रही थी।

आंसुओं के वेग के कारण पद्मदेव बोल नहीं सका। वह तरंगलोला का पत्र खोलकर पढ़ने लगा। सारसिका पद्मदेव को गौर से देख रही थी। पत्र पढ़ते समय उसके मनोभावों के उतार-चढ़ाव को उसने आंका। पद्मदेव ने पत्र पढ़कर कहा–अब विस्तार से कुछ जानने को शेष नहीं रहा है। परन्तु मेरी क्या दशा है, तू संक्षेप में जान ले। यदि तू आज यहां नहीं आती तो मैं मध्याह्न के बाद जीवित नहीं रहता..... तू उचित समय पर आई है..... तेरे कथन के अनुसार तथा पत्र के

भावों के अनुसार आशा प्रगट हुई है कि अब प्रिया से मिलन अवश्य होगा और तब मेरा जीवन रसमय बन पायेगा। यह कहकर पद्मदेव ने सारसिका को सारा वृत्तान्त कह सुनाया कि पूर्णिमा की रात्रि में चित्रांकनों को देखकर उसे कैसे पूर्वजन्म की स्मृति हुई और किस प्रकार उसने चित्रों के माध्यम से अपने पूर्वजन्म को जान लिया।

सारसिका समझ गई कि तरंगलोला और पद्मदेव की बातों में साम्य है। श्रेष्ठीपुत्र की बात सुनने के पश्चात् सारसिका ने तरंगलोला के जातिस्मरण की बात भी संक्षेप में बता दी।

पद्मदेव बोला—'सुंदरी! तुम्हारी सखी के चित्रों को देखने के पश्चात् मेरे हृदय में वियोग का शल्य चुभने लगा और वह और गहराई में घुसता गया। मैं विवश हो गया।' यह कहकर पद्मदेव ने विगत पांच दिनों की हृदय-विदारक कथा कह सुनाई।

पद्म ने आगे कहा-माता-पिता को मैं दुःख देना नहीं चाहता था। वे मेरे लिए सुन्दरतम कन्या की खोज करने में लगे थे। परन्तु मैं·····। सुन्दरी! मैंने अंतिम निर्णय कर लिया था कि दिन में आत्महत्या करना उचित नहीं होगा। अतः आज रात को, जब सभी निश्चिंत होकर नींद लेते होंगे, तब प्रिया की स्मृति के साथ आत्महत्या करने का मेरा अटल निर्णय था। तुम उचित समय पर आई हो। तुम्हारी बातें सुनकर तथा तुम्हारी सखी के भावों को पत्र द्वारा जानकर जीवन की आशा जागृत हुई है। तुम अपनी सखी से कहना—'जिसके पीछे तुमने सती होकर अपने आपका बलिदान दिया है, जिसको तुमने महान् मूल्य चुकाकर खरीदा है वह तुम्हारा दास बनने में गौरव का अनुभव करेगा। तुम्हारे वियोग का अपार दुःख होने पर भी आशा की टिमटिमाती लौ ने मुझे सावचेत किया है·····' मेरे विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक पत्र भी मैं तुझे लिखकर देता हूं, उसे तुम अपनी सखी को दे देना।'

पद्म ने पत्र लिखा और सारसिका को देते हुए पूछा—'सुंदरी! तेरा नाम?'

'सारसिका।'

'अति मधुर नाम है····· अब जा····· भूल मत जाना कि मैंने मेरा निर्णय बदल डाला है।'

सारसिका नमन कर खंड से बाहर आई और जिस मार्ग से भवन में प्रवेश किया था, उसी मार्ग से भवन के बाहर चली गई।

जब वह तरंगलोला के पास आई, तब सूर्य पश्चिम दिशा की ओर बढ़ रहा था। नगरसेठ के भवन में ब्यालू की तैयारियां हो रही थीं। तरंगलोला अपने ही खंड में बैठी थी। सखी सारसिका को आते देख उठी और बोली—'सखी! क्या वे मिले?'

'उनके बिना इतना समय कैसे लगता? तुम्हारा संदेश मैंने उन्हें दे दिया····· उनका संदेश लेकर आई हूं और मुझे यह विश्वास हो गया है कि तुम दोनों पूर्वभव के प्रेमी हो।' सारसिका ने कहा।

तरंगलोला हर्षातिरेक से सारसिका से लिपट गई।

उसी समय बाहर से एक दासी ने आवाज दी—'बहिन! सेठानीजी प्रतीक्षा कर रही हैं।'

'तू जा, मैं आ रही हूं' कहकर तरंगलोला ने सारसिका से कहा—'सखी! मुझे सारी बात बता।'

'मां तुझे बुला रही है। बात छोटी नहीं है, लंबी है····· चलो, हम ब्यालू कर लें····· फिर निश्चिंत होकर बात करेंगी।'

दोनों सखियां भोजनगृह में गई। भोजन कर तरंगलोला सारसिका को साथ ले अपने खंड में आ गई। उसके पीछे-पीछे एक दासी दीपमालिका जलाने के लिए खंड में आई।

दासी के जाने के पश्चात् सारसिका ने खंड का द्वार बंद कर अपने उत्तरीय के अंचल में बंधे पद्मदेव के पत्र को तरंगलोला के हाथों में देते हुए कहा-'सखी! पहले तू उनका संदेश पढ़ ले।'

दीपमालिका के प्रकाश में तरंगलोला ने अपने पूर्वभव के पति का पत्र पढ़ना प्रारंभ किया। उसमें लिखा था—

'मेरे अन्तःकरण की सुधारूपिणी और स्नेह रानी तरंगलोला को मेरा स्नेह-स्मरण। जिसका वदन कमल सदृश है और जिसका पूरा शरीर अनंग के बाणों से आहत है तथा अपूर्व वेदना का अनुभव कर रहा है उस युवती का सदा मंगल हो। तीव्र वियोग के मध्य भी जिस स्नेह-बंधन से अपने को बांध रखा है उस मकरध्वज को प्रणाम। मैं भी प्रेम से पूर्ण आहत हूं, घायल हूं। पूर्वभव की स्मृति ने मुझे झकझोर डाला है। जब तक तू मुझे प्राप्त नहीं होगी तब तक मैं तिल-तिल कर जलता रहूंगा····· मैं तुझे प्राप्त करने के विविध उपाय सोच रहा हूं। मेरे माता-पिता तथा तेरे माता-पिता की अनुमति प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न कर रहा हूं। इसमें मेरे मित्र सहयोगी बन रहे हैं। तू धैर्य रखना। मिलना अवश्य होगा····· होगा·····। आज हम इतने निकट रहकर भी दूर हैं, यह कोई नियति ही है·····तेरे विगतभव का प्रियतम·····'

पत्र पढ़कर तरंगलोला के नयन आर्द्र हो गए····· वह विचारों में खो गई।

यह देखकर सारसिका बोली—'क्यों तरंग! क्या मन चंचल हो गया है?'

'सारसिका! इस पत्र को पढ़ने के पश्चात् मुझे प्रतीत होने लगा कि क्या धैर्य रखने से स्नेह की उष्मा ठंडी तो नहीं पड़ जाएगी?'

'पगली! तेरा पत्र तथा मेरे द्वारा कही गई बात ही तो तेरे प्रियतम का

जीवातु बना है····· अन्यथा आज रात्रि में वे आत्महत्या करने वाले ही थे·····!'

'हैं! आत्महत्या?'

'हां!' सारसिका ने पद्मदेव के साथ हुई सारी बात विस्तार से बताते हुए कहा—'तरंग! तू एक बात को याद रख कि वीर पुरुष अपने संकल्प को सफल बनाने के लिए कोई न कोई उपाय निकाल लेते हैं। जब तक सशक्त उपाय नहीं मिलता तब तक वे कालक्षेप अवश्य करते हैं, पर निष्क्रिय नहीं रहते। तेरा प्रियतम जितना सुंदर और शालीन है, उतना ही वीर और धीर है। स्नेह के बंधन धैर्य से शिथिल नहीं होते, किन्तु और अधिक सुदृढ़ होते हैं।'

फिर सारसिका ने भी पद्मदेव का पत्र पढ़ा। वह बोली—'पद्मदेव का पत्र अर्थयुक्त है। उन्होंने मेरे द्वारा यह कहलाया है कि पत्र उचित समय पर आया, अन्यथा न जाने क्या हो जाता। सखी! अभी तक हमारा मनोवांछित हो रहा है····· धैर्य रखना है····· मेरी आत्मा कहती है कि तुझे तेरा प्रियतम अवश्य मिलेगा।'

तरंगलोला के नयन चमक उठे। आशा अमर धन है। उसका गीत संजीवनी होता है।

१६. नगरी का त्याग

तरंगलोला ने प्रियतम के पत्र को पुनः पढ़ा। प्रेमी व्यक्ति परस्पर के पत्र जितनी बार पढ़ते हैं, उतनी ही बार उनको उन पत्रों में कुछ न कुछ नूतन बात मिलती है। प्रिय के पत्र पढ़ने में न थकान आती है और न ऊब ही महसूस होती है।

अनेक बार मोह और प्रेम एक ही दिखाई देने लगते हैं और उनमें भेद करना तब सरल नहीं होता। मनुष्य तब मोहांध बन जाता है।

पद्म के पत्र को दो-तीन बार पढ़कर तरंग बोली—'सखी! इस संदेश में अन्तःकरण की कविता भरी है। ऐसा मुझे प्रतीत होता है।'

'मिलन की तमन्ना से ओतप्रोत मन पागल-सा बन जाता है और पागल मन एक मधुर काव्य-सा प्रतीत होता है····· मुझे तो पूर्वभव का अथवा इस भव का ऐसा कोई अनुभव है नहीं, तो फिर मैं क्या कहूं ? परन्तु तेरे नयनों के तेज से मैं कुछ कल्पना कर सकती हूं·····।'

'क्या?'

'इस क्या का उत्तर मेरे पास नहीं है····· चल, हम दोनों छत पर चलती हैं और वहीं दो शय्याएं बिछाकर एकान्त में निश्चिन्तता से कुछ बातें करें' कहकर सारसिका खड़ी हुई।

तरंगलोला को यह प्रस्ताव उचित लगा, किन्तु प्रतिक्रमण का समय हो जाने के कारण वह बोली—'सारसिका! दासी को आज्ञा कर देती हूं····· छत पर जाने

से पूर्व हम प्रतिक्रमण कर लेती हैं, अन्यथा मां प्रश्न करेगी और असत्य हेतु से मन दुःखी होगा।'

दोनों सखियां खंड से बाहर आईं। एक दासी को छत पर बिछौना करने की आज्ञा देकर दोनों कपड़े बदल आराधना-कक्ष में प्रतिक्रमण करने गईं।

प्रतिक्रमण से निवृत्त होकर जब दोनों सखियां छत पर पहुंची, उस समय चन्द्रमा की मधुर चांदनी विश्व को नहला रही थी। अभी रात्रि का पहला प्रहर पूरा नहीं हुआ था।

दोनों सखियां शय्या पर लेट गईं।

दोनों बातें करने लगीं। पद्मदेव को देखकर सारसिका के मन पर क्या प्रभाव हुआ! इस प्रश्न के उपजीवी अनेक प्रश्न उभरने लगे। बातें जब मन को भाती हैं तब समय की कल्पना नहीं होती।

पूर्वभव के प्रियतम की बातें करती-सुनती हुई तरंग चंचल हो उठी। धैर्य का बांध टूट गया। मिलन की आकांक्षा मनुष्य को अधीर बना डालती है। तरंगलोला बोली—'सखी! आकाश की ओर देख। कुमुद को प्रसन्न करने वाला चांद जैसे-जैसे ऊपर आ रहा है वैसे-वैसे श्रेष्ठीपुत्र से मिलने की मेरी आकांक्षा उदग्र बनती जा रही है। उनसे मिलने की भावना इतनी उग्र है कि तेरी सयानी बातें मेरे हृदय में स्थान नहीं पा सकतीं। सखी! मेरे प्राण मेरे प्रियतम को देखने के लिए तड़फ रहे हैं। तू मेरा एक काम कर।'

सारसिका ने प्रश्नायित दृष्टि से तरंग को देखा।

तरंग बोली—'सखी! तू एक बार मुझे उनके पास ले चल····· एक भव में वे मेरे प्रियतम थे और आज भी वे ही मेरे स्वामी हैं और स्नेह की वेदी पर लज्जा का बलिदान तो करना ही होगा।'

सारसिका शय्या पर उठ बैठी और मृदस्वरों में बोली—'चल, अब नीचे चलते हैं। विरह को जगाने वाले चन्द्रमा को देखकर तू विह्वल हो गई है, पगली हो गई है। तरंग! तुझे अपनी कुल-मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए। तेरी जैसी संस्कारी कन्या कुल को कलंकित करने के मार्ग पर चले, तो फिर शेष क्या बचेगा? ऐसा साहसिक कदम उठाने का विचार भी तू कैसे कर सकती है? मन से तू उनकी हो चुकी है और वे तेरे हो चुके हैं····· धैर्य को क्यों खोना चाहिए? पद्म भी तुझे पाने का प्रयत्न कर ही रहा है और तू भी अपने माता-पिता को कहकर उसे पाने का प्रयत्न कर·····'

तरंगलोला विह्वल, पागल और विक्षिप्त-सी हो गई थी, उसकी दृष्टि में केवल पूर्वभव का पति ही समाया हुआ था। वह बोली—'सारसिका! तू मेरी प्रिय सखी है····· तू मेरे सुख-दुःख की मित्र भी है····· संभव है कि लौकिक-दृष्टि से जो विवेक मुझे रखना चाहिए वह मैं नहीं रख पा रही हूं, परन्तु मनुष्य को प्रत्येक

विपत्ति के साथ लड़ना सीखना चाहिए। साहसिक व्यक्ति विपत्तियों से डरता नहीं। साहस करने वाला ही संसार में विजेता बनता है। प्रारंभ काल में जो कार्य कठिन लगता है वही करते-करते सरल प्रतीत होने लगता है। मेरी इतनी प्रबल उत्कंठा को जानती हुई भी यदि तू मेरे प्रिय के पास नहीं ले जाती है तो तेरी आंखों के सामने ही मैं अपने तुच्छ प्राणों की बलि दे दूंगी और मृत्यु की गोद में सुख से सो जाऊंगी।'

सारसिका ने फटी आंखों से तरंगलोला की ओर देखा।

तरंगलोला बोली—'सखी! तू क्षणमात्र भी विलंब मत कर। मुझे येन-केन-प्रकारेण उनके पास ले चल। यदि तू मुझे मृत देखना नहीं चाहती तो मेरी प्रिय सखी के रूप में यह अपकृत्य भी करने के लिए तैयार हो जा...'

सारसिका किंकर्त्तव्यविमूढ़ बन गई। कुछ क्षण सोचकर वह उठी और बोली—'तेरी मृत्यु से तो इस अपकृत्य को करना उचित है..... चल, मेरे साथ.....'

तरंगलोला हर्षित हो उठी।

अभी रात्रि का दूसरा प्रहर चल रहा था।

दोनों सखियां नीचे उतरीं। तरंग के हृदय में प्रियतम से मिलने की भावना तीव्र हो रही थी। उसने अपने श्रेष्ठ कौशेय वस्त्र पहने..... उत्तम वज्र और नीलमणि के अलंकार धारण किए। फिर भवन के पीछे के भाग के द्वार से दोनों सखियां राजमार्ग पर आ गईं। दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर चल रही थीं। राजमार्ग पर यदा-कदा लोग आते-जाते थे..... मुख्य बाजार में अभी तक कुछ दुकानें खुली थीं। सेठ-मुनीम अपने-अपने कामों में तल्लीन थे।

तरंगलोला का चित्त प्रियतम से मिलने के लिए इतना आतुर था कि मार्गगत मनोज्ञ-अमनोज्ञ दृश्यों से उसका मन अजान था। पैदल कभी न चलने वाली तरंग आज निर्भयता से, बिना थके, आगे बढ़ती जा रही थी।

लगभग एकाध घटिका चलने के पश्चात् सारसिका और तरंगलोला धनदेव सेठ के भवन के पास आ पहुंची।

सद्भाग्य से पद्मदेव अपने मित्रों के साथ बाहर ही बैठा था। वह वीणावादन कर रहा था। सारसिका बोली—'तरंग! देख, जो वीणावादन कर रहे हैं, वे ही पद्मदेव तेरे पूर्वभव के प्रियतम हैं। देख, कितने सुडौल, सुंदर? अच्छी तरह से देख ले..... फिर हम चलते हैं। मन भर कर देख ले.....'

'परन्तु इनसे मिले बिना.....' कहते-कहते तरंग रुक गई। क्योंकि पद्मदेव वीणा सेवक को देकर, मित्रों को विदा करने राजमार्ग पर आ गया था।

प्रस्थान करते हुए एक मित्र बोला—'पद्म! उस बात की चिन्ता मत करना..... चिन्ता भरे रात्रि-जागरणों से शरीर क्षीण हो जाता है। व्यक्ति आधि और व्याधि से ग्रस्त हो जाता है।'

'मधुर चिन्ता काया को प्रेरणा देती है। यदि तू मेरी स्थिति में होता तो तुझे ज्ञात होता कि उस स्थिति को सहज करना कितना कठिन होता है?' पद्मदेव ने कहा।

सभी मित्र विदा हो गए।

पन्द्रह-बीस कदम मित्रों को पहुंचा कर पद्मदेव भवन की ओर मुड़ा। अचानक उसकी दृष्टि मार्ग के एक छोर पर खड़ी दो नवयौवनाओं पर पड़ी और चांदनी के प्रकाश में उसने सारसिका को पहचान लिया। तत्काल वह उन नवयौवनाओं की ओर गया····· निकट आकर तरंगलोला को देखते ही वह चौंका····· पूर्वभव की स्मृति के कारण मानो वह उसे पहचान गया हो, वैसे स्वरों में बोला—'ओह! आप·····?'

सारसिका बोली—'जिसके चित्र देखकर आप मूर्च्छित हो गए थे, वह मेरी सखी तरंगलोला है।'

पद्मदेव ने तरंगलोला की ओर देखकर कहा—'आज अर्धरात्रि के पश्चात् मैं तुम्हारे भवन पर चित्र देखने आने वाला था, परंतु मेरा सद्भाग्य कि मेरे हृदय को मथने वाली चित्रों की नायिका के सजीव दर्शन हो गए। कुशल तो है न?'

तरंगलोला कुछ भी नहीं बोल सकी····· नीचे दृष्टि गाड़े खड़ी रही····· हृदय में तूफान था····· परन्तु·····।

सारसिका बोली—'श्रेष्ठिपुत्र! गंगा नदी ज्यों उल्लास भरे हृदय से अपने स्वामी समुद्र से मिलने के लिए बहती-बहती आगे बढ़ती जाती है, वैसे ही मेरी सखी आपसे मिलने के लिए उल्लास भरे हृदय से यहां आई है।'

सारसिका के ये शब्द सुनकर तरंगलोला हर्ष से कांप उठी····· उसके चेहरे पर प्रस्वेद के बिन्दु उभर आए·····।

पद्मदेव ने स्मृतप्रिया का हाथ पकड़कर अपने हृदय पर रखते हुए कहा—'मेरे समस्त परितापों का हरण करने वाली प्रिये! तेरा कल्याण हो, कहकर उसने तरंगलोला के कमल जैसे नयनों की ओर देखा। तरंगलोला ने पद्मदेव को तिरछी दृष्टि से देखा।

तरंगलोला का हृदय प्रियतम के स्पर्श से धड़क उठा। वह एक शब्द भी नहीं बोल सकी।'

पद्मदेव बोला—'प्रिये! तूने मेरे से मिलने का यह साहस कैसे किया? तेरे पिताश्री को जब तक मैं समझा न सकूं तब तक धैर्य रखना ही श्रेयस्कर है····· मैंने यह बात पत्र में भी लिखी थी। तेरे पिता महाराज के मित्र हैं, अग्रेसर हैं और इस नगरी में उनकी अपूर्व प्रतिष्ठा है। तेरे इस आचरण को यदि वे जान लेंगे तो उनको कितना आघात लगेगा और यदि वे कुपित हो जायेंगे तो मेरा प्रयत्न निष्फल होगा। इतना ही नहीं, मेरा परिवार भी शत्रु बन जायेगा। मैं प्रार्थना करता

हूं कि वे तेरी अनुपस्थिति को न जान पाएं, उससे पूर्व ही तू भवन में लौट जा। ज्यों-त्यों मैं तुझे प्राप्त करने का पूरा प्रयत्न करूंगा, क्योंकि तेरे बिना मेरा जीवन शून्य हो रहा है····· और आज के इस मिलन को हम कितना ही गुप्त रखना चाहें, किन्तु तेरे पिता की नजरों से वह गूढ़ नहीं रह सकेगा·····'

इस प्रकार पद्मदेव कुछ आगे कह रहा था कि राजमार्ग पर एक व्यक्ति गुनगुनाते हुए चल रहा था। वह कह रहा था-'स्वयं सामने आई हुई प्रिया, यौवन, अर्थ, राज्यलक्ष्मी, वर्षा और चांदनी का जो उपभोग कर लेता है वह धन्य है। जो उपभोग नहीं कर पाता, वह भाग्यहीन है। प्राणों से प्रिय ऐसी प्रिया को पाकर भी जो छोड़ देता है, वह मनुष्य अपनी मनोकामना को कभी पूरा नहीं कर सकता।'

तीनों यह सुनकर चौंके। कौन होगा यह? ऐसी मध्यरात्रि में इस प्रकार गुनगुनाने का प्रयोजन ही क्या हो सकता है? और वह भी इस स्थल पर?

सारसिका बोली–'श्रेष्ठिपुत्र! आपके बिना एक क्षण भी जीवित न रह सकने के कारण मेरी सखी ने यह साहस किया है····· यदि मैं इसे यहां नहीं लाती तो यह मृत्यु की गोद में समा जाती।'

पद्मदेव ने तरंगलोला की ओर देखा, फिर बोला–'ओह! तब तो एक ही मार्ग है·····'

तरंगलोला प्रियतम की ओर देखकर मधुर स्वरों में बोली–'कौन-सा?'

'हमें यहां से परदेश चले जाना चाहिए। तेरे पिता सावचेत हों, उससे पूर्व ही यहां से पलायन कर जाना चाहिए····· ऐसा करने पर ही अन्तराय से बचकर आनन्दपूर्वक रह सकते हैं।'

'स्वामिन्! अब मैं पुनः अपने माता-पिता के घर जाऊं, यह संभव नहीं है····· आप जहां जायेंगे, मैं आपके पीछे छाया की भांति चली आऊंगी।'

कुछ सोचकर पद्म बोला–'हमें यही करना होगा····· हम यहां से पलायन कर जाएं····· मैं भवन में जाकर प्रवास की तैयारी कर लूं–तुम दोनों यहीं खड़ी रहना····· यहां किसी प्रकार का भय नहीं है·····' यह कहकर पद्मदेव भवन में तैयारी करने प्रस्थित हुआ।

तरंगलोला स्नेहिल दृष्टि से पद्म की ओर देखती हुई खड़ी रही। सारसिका ने कहा–'सखी! इस प्रकार पलायन करने से·····' बीच में ही तरंग बोली–'मैं समझती हूं सखी! परन्तु इसके सिवाय और कोई निष्कंटक मार्ग नहीं है। यदि हम भवन में चलेंगे तो कोई न कोई देख लेगा तो झंझट खड़ा हो जाएगा····· और प्रियतम के बिना एक क्षण भी रह पाना मेरे लिए कठिन हो जाएगा।'

'ओह·····' सारसिका चिन्तामग्न हो गई।

तरंगलोला बोली–'तू शीघ्र भवन की ओर जा····· मेरी पेटी खुली पड़ी है····· उसमें मेरे अलंकार ले आ तथा दो युगल वस्त्र भी लेती आना·····।'

सारसिका के लिए और कोई उपाय नहीं बचा था। उसे विश्वास हो गया कि तरंगलोला अब घर नहीं चलेगी।

वह त्वरित गति से नगरसेठ के भवन की ओर गई।

पद्मदेव कुछेक सामग्री लेकर इतने में ही आ पहुंचा। वह तरंग से बोला–'चल प्रिये! तेरे पिता को ज्ञात हो उससे पूर्व ही हम यहां से निकल जाएं।'

तरंगलोला ने घबराहटभरे स्वरों में कहा–'मैंने अपनी सखी को अलंकार लाने भवन की ओर भेजा है····· कुछ देर उसकी राह देखनी होगी।'

पद्मदेव ने कहा–'प्रिये! नीतिकार कहते हैं कि स्त्री कोई भी बात अपने हृदय में रख नहीं सकती । तेरी सखी चतुर होने पर भी आखिरकार है तो एक स्त्री ही। हम इस प्रकार जाना चाहते हैं कि किसी को कुछ ज्ञात न हो सके। कुछ कल्पना भी न कर सके। और तेरे अलंकरण लेने के लिए तेरी सखी गई है। जाते-आते यदि उसे किसी ने देख लिया तो क्या होगा ? देख, मैंने पर्याप्त आभूषण साथ में ले लिये हैं, तू चिंता किए बिना मेरे पीछे-पीछे आ जा·····'

वैसा ही हुआ।

दोनों चल पड़े। दोनों यमुना नदी के तट पर पहुंच गए। इस घाट पर धनदेव सेठ की कुछेक नौकाएं पड़ी रहती हैं। उनमें से एक सुखद नौका का चुनाव कर पद्मदेव और तरंगलोला–दोनों उसमें बैठ गए। आभूषणों की पेटी एक ओर रखकर, पद्मदेव ने नौका को यमुना नदी के प्रवाह में प्रस्थित किया।

प्रवास से पूर्व दोनों ने इष्टदेव का स्मरण किया। किन्तु बाईं ओर नदी के किनारे कुछ सियार बोलने लगे। आवाज कर्कश और कर्णकटु थी। पद्मदेव ने नौका की गति को मंद कर नौका को रोकते हुए कहा–'शकुन अच्छे नहीं हुए हैं। अच्छे शकुन की प्रतीक्षा करनी होगी।' नौका पानी में स्थिर थी, फिर भी यमुना की तरंगों से वह ऊंची-नीची होने लगी और पानी भी उछल-उछल कर नौका में आने लगा। पद्मदेव ने नौका को चलायमान किया।

एकाध कोस चलने के पश्चात् नौका की गति तीव्र हुई····· यमुना भी प्रशान्त दीखने लगी और प्रवास की निर्विघ्नता और निर्भयता की कल्पना कर पद्मदेव ने प्रेमभरे स्वरों में कहा–'प्रिये! जन्मान्तर के दीर्घ वियोग के पश्चात् हमारा पुनः मिलन हुआ है, यह कितने बड़े सौभाग्य की बात है। यदि चित्रांकन नहीं हो पाता तो हम कभी भी नहीं मिल पाते····· क्योंकि पूर्वभव के हम दोनों के रूप बदल चुके हैं–कहां तो पक्षी का भव और कहां मनुष्य का भव। तरंग! तूने ये चित्रांकन प्रस्तुत कर मेरे जीवन को धन्य बना डाला····· उनको देखे बिना पूर्वभव की स्मृति कैसे होती और कैसे होता यह मिलन?'

तरंगलोला प्रियतम के शब्दों से अपूर्व सुख की अनुभूति कर रही थी····· परन्तु स्त्री-सुलभ लज्जा के कारण कुछ बोल नहीं सकी।

पद्मदेव तरंगलोला से बात करने के लिए विविध प्रसंग उपस्थित करते हुए बोला–'प्रिये! आज के साहसिक कदम से तुझे कुछ दु:ख तो नहीं हुआ?'

पैरों के अंगूठे से नौका को कुरेदते हुए तरंगलोला बोली–'आप मेरे आराध्यदेव हैं, प्राण हैं, प्रियतम हैं। आपके साथ सुख-दु:ख जो भी आए उसे सहन करने के संकल्प के साथ ही इस साहसिक प्रयत्न के साथ जुड़ी हूं। विगतभव से ही मैंने आपके चरणों में स्वयं को समर्पित कर दिया है। आप जो चाहें करें..... मेरा पूर्ण समर्पण है। फिर भी मैं एक प्रार्थना करना चाहती हूं.....'

'बोल, तरंग! बोल। तेरी एक भी भावना अपूर्ण नहीं रहने दूंगा..... बोल, रुक क्यों गई?'

'स्वामिन् कैसी भी विपत्ति या परिस्थिति आए, आप मुझे अकेली छोड़कर नहीं जाएंगे..... मुझे सदा साथ रखेंगे..... स्नेहबंधन को शिथिल नहीं होने देंगे..... आप मुझे खाने को कुछ दें या न दें, किन्तु मुझे हृदय का भोजन सदा देते रहेंगे।'

पद्मदेव बोला–'प्रिये! मन में किसी प्रकार का संदेह मत रखना.....तुझे तनिक भी दु:ख नहीं होने दूंगा.....देख, हम इस शरद् ऋतु की वेगवती नदी में अनुकूल पवन के सहारे सुखपूर्वक यात्रा कर रहे हैं। काकन्दी नगरी के निकट हम पहुंच रहे हैं। उस नगरी में मेरी बुआ रहती है। वहां हमें सुखपूर्वक रहने का स्थान मिलेगा..... तू मेरे सुख की प्रेरणा है और मेरे दु:ख-दर्द का अपनयन करने वाली है..... मेरे जीवन का सर्वस्व है तू..... मेरे वंश की भूमि है।'

तरंगलोला ये शब्द सुनकर भावविभोर हो उठी।

१७. लुटेरों के पंजों में

दो युवा हृदय हों, दोनों विरह में तड़फ रहे हों, पूर्वभव की स्मृति के साथ जिनकी प्रीति शतदल कमल की तरह खिल उठी हो, एकान्त हो, अंधकार से परिपूर्ण उत्तर रात्रि का समय हो और यमुना नदी के शांत प्रवाह पर नौका चल रही हो तो मनुष्य यदि अधीर होता है तो इसमें संशय कैसा?

पद्मदेव ने चलती नौका में तरंगलोला का एक हाथ पकड़ते हुए कहा–'प्रिये! एक सूचना दूं।'

तरंगलोला ने आंख के इशारे से स्वीकृति दी।

पद्मदेव बोला–'तरंग! नौका को स्वच्छ किनारे पर ले जाऊं.....'

'क्यों?

'वहां नीचे उतर कर हम दोनों गान्धर्व-विधि से विवाह के बंधन से बंध जाएं.....'

'गांधर्व-विधि से तो इस नौका में भी विवाह-विधि संपन्न हो सकती है।' मधुर मुस्कान के साथ तरंगलोला बोली।

'पुष्प-मालाएं तो हमारे साथ हैं नहीं·····'

'ये मालाएं तो कुछ ही समय में कुम्हला जाती हैं····· हम हाथ की मालाएं बनाएं और·····'

'ओह प्रिये!' कहकर पद्मदेव ने नौका खेने के दोनों दंड नौका में ले लिये और वह बोला—'तो अब इष्ट की स्तुति कर अटूट बंधन में बंध जाएं।'

वैसे ही हुआ।

दोनों ने इष्टदेव की स्तुति की और परस्पर एक-दूसरे के गले में हाथों की माला बनाई····· करमाला बनाई····· दोनों परस्पर स्नेहपाश में बंध गए।

नौका को गतिमान कर कुछ ही क्षणों में यमुना के रेतीले किनारे पर पहुंच गए।

वहां कोई घाट तो था नहीं····· फिर भी नौका वहां स्थिर रही। नौका को किनारे के पास पड़े पत्थर से बांध दिया।

लगभग सौ कदम की दूरी पर एक सुन्दर वृक्ष था। दोनों वहां गए और अधीर हृदय से तृप्ति के आनन्द में डूब जाए।

ठीक ही है कि ज्ञानी पुरुष भी काम के वशीभूत हो जाते हैं तो फिर इन दोनों युवा हृदयों की तो बात ही क्या?

तृप्ति को संजोए दोनों पुनः नौका में आ बैठे····· नौका गतिमान हुई।

तरंगलोला लज्जा और संकोचवश दृष्टि को ऊपर नहीं कर पा रही थी।।

कुछ दूर जाने पर गंगा का संगम आया। पद्मदेव ने सावधानीपूर्वक नौका को गंगा में प्रवाहित किया। रात्रिकाल पूरा होने वाला ही था।

गंगा का विशाल मैदान····· दोनों को गंगा की स्मृति हुई····· इस स्मृति के साथ ही साथ विगतभव की क्रीड़ास्थली गंगा की भी स्मृति हो आई।

एकाध कोस दूर जाने पर दोनों ने देखा कि गंगा के दोनों तट वनप्रदेश से शोभित हो रहे हैं····· सूर्योदय हो चुका था····· पक्षियों का कलरव संगीत-सा मधुर लग रहा था।

पद्मदेव बोला—'किनारे पर प्रातःकर्म से निवृत्त होकर फिर आगे चलेंगे।'

नौका किनारे पर आई। पद्मदेव ने नौका रोकी। दोनों नीचे उतरे। वातावरण अत्यंत मनोहर और प्रशान्त था····· भय का नामोनिशान नहीं था····· पद्मदेव ने चारों ओर दृष्टि विक्षेप कर कहा—'प्रिये! आसपास में कोई पल्ली भी दृष्टिगोचर नहीं होती।'

'हां, इस रेती पर किसी के पदचिन्ह भी नजर नहीं आते····· संभव है कि आसपास में गाढ़ वनप्रदेश हो।'

दोनों प्रातःकर्म से निवृत्त हों, उससे पूर्व ही दूर की झाड़ियों में से कुछ एक मानवाकृतियां खड़ी हुई और वे इस ओर ही आने लगीं। ये लोग दस्यु जैसे भयंकर और क्रूर प्रतीत हो रहे थे। तरंगलोला की उस ओर दृष्टि जाते ही वह चीख उठी और बोली—'स्वामिन्! कोई दस्युओं का गिरोह आ रहा है। अब हम क्या करेंगे?'

'घबराओ मत प्रिये! तू देख लेना कि मैं एक लकड़ी से किस प्रकार उन सबको खदेड़ देता हूं। तेरे मिलने से मैं इतना बेभान हो गया था कि घर से निकलते समय कोई शस्त्र साथ में नहीं ले सका····· मैंने केवल जवाहरात ही साथ में लिये····· परन्तु ऐसी विपत्ति की संभावना भी नहीं की। फिर भी तू घबराना मत····· युद्ध में विजय उसी की होती है जो बलवान् होता है। वनप्रदेश में रहने वाले ये लोग मुझे नहीं पहचानते, यह स्वाभाविक है। इसीलिए वे हिम्मत कर इस ओर आ रहे हैं और हम भी कुछ आगे चले आए हैं। नौका तक पहुंचना कठिन है····· तू चिन्ता मत करना····· यदि ये दस्यु तेरे पर हाथ उठायेंगे तो मैं अपने प्राणों की बाजी लगा दूंगा।'

'मेरे प्रियतम! मुझे पुनः अनाथ बनाकर न जाएं····· आपको युद्ध करना ही हो तो पहले मुझे मरने देना····· परन्तु आप झूठा साहस न करें····· ये लोग बहुत हैं और देखें ये सब इधर ही आ रहे हैं····· हम चारों ओर से घिर चुके हैं।'

प्रियतमा के इस निवेदन से पद्मदेव शांत हो गया। लुटेरे निकट आ पहुंचे थे।

लुटेरों के सरदार ने कड़ककर कहा—'खड़े रहो। तुम कौन हो? कहां जा रहे हो?'

सरदार की गर्जना सुनकर तरंगलोला कांप उठी।

पद्मदेव कुछ कहे उससे पूर्व ही सरदार ने तेज स्वरों में कहा—'लगता है तुम अभी-अभी प्रणयसूत्र में बंधे हो! मैं तुमको मारूंगा नहीं। जो कुछ तुम्हारे पास हो, वह सारा हमें सौंप दो। कुछ भी गुप्त रखने का प्रयत्न मत करना, अन्यथा एक ही वार में दोनों को यमधाम पहुंचा दूंगा।'

यह सुनते ही तरंगलोला ने अपने सारे आभूषण खोल कर रख दिए। लुटेरों ने आभूषण हस्तगत कर लिये। सरदार के आदेश से दोनों को पकड़ लिया। दो लुटेरे नौका की ओर गए और नौका में पड़ी जवाहरात की पेटी अपने कब्जे में ले ली। पद्मदेव विवश हो गया। पत्नी के शब्दों से वह अत्यन्त नाजुक स्थिति में आ गया। दोनों को लेकर वे लुटेरे गंगा के किनारे-किनारे चलने लगे। कुछ लुटेरे आगे चल रहे थे। बीच में पद्मदेव और तरंगलोला और पीछे कुछ लुटेरे थे। तरंगलोला घबरा कर चीख उठी। एक लुटेरे ने कहा—'चुप रह। अन्यथा हम तेरे इस आदमी को मार डालेंगे और तुझे अपनी पल्ली में ले जाएंगे।'

तरंगलोला चुप हो गई। परन्तु कर्मों की इस विडंबना से उसका मन रो रहा था। स्वामी का अकल्याण न हो जाए, इसलिए वह रुदन को दबा रही थी..... परन्तु उसका सुबकना बंद नहीं हुआ।

कुछ दूर चलकर सभी लुटेरे एक स्थान पर रुक गए और नौका से प्राप्त जवाहरात की पेटी खोली। उसमें पड़े अलंकारों को देखकर सरदार बोल उठा—'अच्छा शिकार मिला।' दूसरे लुटेरे ने कहा—'यदि हम किसी राजा के महल में गए होते और सारा महल छान डाला होता तो भी ऐसे बहुमूल्य आभूषण प्राप्त नहीं होते।'

तीसरा बोला—'कोई जीवन भर परिश्रम कर धन कमाए, जुआ खेले तो भी इतना धन एकत्रित नहीं हो सकता। इन अलंकारों को हम अपनी पत्नियों को देंगे तो वे आनन्द से झूम उठेंगी।'

इसके बाद सरदार ने आगे चलने का संकेत दिया। चलते-चलते पद्मदेव को यह कल्पना हुई कि ये सभी लोग विन्ध्याचल की दक्षिण दिशा की ओर जा रहे हैं।

एक पर्वतमाला दिखाई दी। पद्मदेव ने देखा, वह प्रदेश निर्जन था। ऊबड़खाबड़ भूमि पर चलने के कारण तरंगलोला के पैर लाल हो गए थे। इस प्रकार की भूमि पर चलने का कभी अवसर ही नहीं आया था। सदा वाहन तैयार रहते थे। यही स्थिति पद्मदेव की थी। परन्तु.....

पहाड़ी के आसपास गहरी वनराजी थी..... लुटेरे दोनों को लेकर एक गुफा के द्वार पर पहुंचे। वहां एक भीमकाय मनुष्य खड़ा था। उसने गुफा का द्वार खोला। दिन का दूसरा प्रहर पूरा हो रहा था।

इस टोली के नायक ने तरंगलोला और पद्मदेव को एक ओर खड़ा कर उन्हें एक रज्जु से बांध दिया फिर दोनों को गुफा में ले गया।

कुछ दूर गुफा में चलने के बाद पद्मदेव ने यह जान लिया कि यह सामान्य गुफा नहीं है, गुफा नगरी है। गुफा की दीवारों पर अनेक शस्त्रास्त्र लटक रहे थे। और गुफा के भीतरी भाग से झांझ, करताल, ढ़ोल आदि की ध्वनि सुनाई दे रही थी..... साथ ही साथ नृत्य, गान तथा विविध प्रकार की ध्वनियों से कलरव भी हो रहा था।

कुछ दूर जाने पर विशाल मैदान दिखाई दिया..... वहां मंदिर जैसा एक भवन था। पद्मदेव ने मंदिर की ध्वजा देखकर यह जान लिया था कि यह काली देवी का मंदिर है और वहां खड़े स्त्री-पुरुष बलि का उत्सव मना रहे थे।

यह दस्यु टोली दोनों को मंदिर के पास ले गई..... तरंगलोला को प्रतीत हुआ कि वहां तो अनेक परिवार निवास कर रहे हैं..... गुफा एक छोटे गांव जैसी थी..... और वहां खड़े स्त्री-पुरुष दोनों को देखकर आश्चर्यचकित रह गए.....

एक आदमी तो बोल उठा–'वाह! स्त्री-पुरुष की रचना करते समय ब्रह्मा ने अपनी अद्‌भुत कला से इस जोड़ी की रचना की है! जैसे चांद रात से और रात चांद से शोभित होती है वैसे ही ये दोनों एक-दूसरे से शोभित हो रहे हैं।'

लुटेरे काली माता को नमन कर पद्मदेव और तरंगलोला को साथ ले आगे बढ़े। एक अति सुंदर जोड़ी आज पकड़ी गई है, यह समाचार सुनते ही स्त्री-पुरुष अपने-अपने गुफा-गृह से बाहर निकल कर इस विचित्र जोड़ी को देखने मार्ग पर खड़े हो गए थे।

पद्मदेव ने देखा कि इस भूगर्भ पल्ली में और भी अनेक बंदी स्त्री-पुरुष हैं····· वे स्त्रियां इस सुंदर युगल को देखकर रोने लगीं····· मानो कि यह युगल उनका अपने ही परिवार का हो!

लुटेरों की टोली के बीच पद्मदेव और तरंगलोला शांत भाव से चल रहे थे। इतने में ही एक जवान, सुडौल, सशक्त और सुंदर स्त्री आगे आकर दस्यु टोली के नायक से बोली–'अरे! इस युगल को घड़ी भर के लिए यहां खड़ा रख। यह चंद्र जैसा जवान पुरुष तो सात भवों में भी देखने को नहीं मिलेगा। लुटेरों की स्त्रियां इस कामदेव जैसे रूप-रंग वाले नौजवान को देखकर धन्य बनीं।' फिर उसने पद्मदेव की ओर नजर डालकर कहा–'अरे! तू हमारी ओर देख तो सही। तेरा सुंदर रूप बहुत मनमोहक है।'

इस प्रकार पद्मदेव को देखकर अनेक स्त्रियां मोहांध बन गई थीं। इसी प्रकार जवान पुरुष भी तरंगलोला के दिव्य रूप से पागल हो गए थे।

लुटेरों की टोली आगे बढ़ रही थी। एक दस्यु ने अपने साथी से कहा–'मुझे तो प्रतीत होता है कि हमारा सरदार इस पुरुष को मारकर इस नारी को अपनी घरवाली बना लेगा।'

ये शब्द सुनकर तरंगलोला कांप उठी। उसने सोचा–क्या मेरे कारण मेरे प्राणेश्वर के प्राण ये पापी लोग लूट लेंगे? रुके हुए आंसू पुनः आंख-कमल से प्रवाहित होने लगे। और लुटेरों की वह टोली एक गुफागृह के पास आकर खड़ी रह गई। वह गुफागृह इनके सरदार का था। इस टोली का नायक दोनों को भीतर ले गया। पद्मदेव ने देखा कि एक प्रौढ़ मनुष्य शय्या पर बैठा-बैठा हुक्का पी रहा है। उसकी काया ताम्रवर्ण की थी। उसकी भुजाएं प्रचंड और आंखें रक्त थीं। एक ओर मदिरा के भांड पड़े थे और वह कमलपत्र के व्यजन से हवा ले रहा था।

चार-पांच चांडाल दूर बैठे थे और विविध प्रकार के शस्त्र वहां पड़े थे। तरंगलोला और पद्मदेव ने कांपती काया से प्रणाम किया····· और जैसे बाघ मृगयुगल पर दृष्टि डालता है वैसी ही दृष्टि डालते हुए सरदार ने टोली के नायक को धन्यवाद देते हुए कहा–'शाबाश! क्या जोड़ी लाए हो! हम काली मैया को इस युगल की बलि देकर प्रसन्न करेंगे····· ऐसी सुंदर जोड़ी के बलिदान से मां

काली सदा प्रसन्न रहेगी और हम सब पर अमृत की वर्षा करती रहेगी..... यह जोड़ी मेरी कल्पना से भी अत्यधिक सुंदर और तेजस्वी है..... तुम दोनों को बंदी बनाकर रखना..... बलिदान दिन तीन दिन बाद है.....ये यहां से पलायन न कर जाएं, यह सावचेती रखना..... ऐसा भोग जीवन में एकाध बार ही प्राप्त होता है।'

लुटेरों के नायक ने मस्तक झुकाया।

यह नायक अन्य कोई नहीं, किन्तु वाराणसी नगरी के महापंडित का एकाकी पुत्र रुद्रयश था, जिसको पिता ने दुराचरण के कारण घर से निकाल दिया था और जो इस दस्यु टोली के साथ मिल गया था।

रुद्रयश दोनों को लेकर सरदार के घर से विदा हुआ।

१८. पाषाण भी पिघल गया

महापंडित का पुत्र रुद्रयश लुटेरों की इस टोली के साथ जुड़ गया था। उसके साहस और चालाकी पर मुग्ध बनकर सरदार ने इसे बीस लुटेरों का नायक बना दिया था।

इस गुफा नगरी में वह बहुत मौज-मस्ती से रह रहा था। वह सरदार का बायां हाथ बन बैठा था..... मांसाहार, शराब और बाहर से पकड़कर लायी गई स्त्रियों के साथ व्यभिचार..... यह उसके जीवन का क्रम बन गया था। आज तक वह कभी अपने अभियान में निष्फल नहीं हुआ था। आज वह रुद्रयश अपनी टोली के साथ गंगा के किनारे एक गांव को लूटने के मन से निकला था। परन्तु किनारे पर पद्मदेव और तरंग को देखकर, उसके शरीर पर चमकने वाले आभूषणों से मुग्ध बन गया था। इसलिए गांव को लूटने के बदले इन दोनों को लूटने के लिए तैयार हुआ था और भाग्योदय से उसे अवसर मिल गया। उसने सारा धनमाल लूट कर दोनों को बंदी बना वह अपनी गुफा नगरी में आ गया था। सरदार ने दोनों की बलि देने के लिए रुद्रयश को दोनों को संभालकर रखने की बात कही थी।

रुद्रयश दोनों को एक गुफागृह में ले गया।

एक साथी बोला–'सरदार! यह मनुष्य बलवान् प्रतीत होता है। दोनों को खुला रखेंगे तो इनके भागने का डर है।'

रुद्रयश ने हंसते हुए कहा–'मेरी दृष्टि इन पर ही लगी हुई है। तू मेरे घर से एक रज्जु ले आ।'

लुटेरा वहां से चला।

पद्मदेव और तरंगलोला–दोनों उस गुफागृह में अकुलाहट अनुभव कर रहे थे। वे दोनों एक ओर खड़े थे। फर्श टूटा-फूटा, बीच-बीच में गड्ढे और पथरीला.....

इस गृह में रातभर सोने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इस गृह में दिन में सूर्य का प्रकाश रहता था। यह संपूर्ण नगरी पर्वतमालाओं के मध्य थी। कोई इस पर आक्रमण कर सके, ऐसी कल्पना कभी नहीं होती थी। यहां आने-जाने के दो मार्ग थे..... एक मुख्य मार्ग और दूसरा गुप्त मार्ग। गुप्त मार्ग की जानकारी मात्र सरदार और उसके कुछेक मुख्य साथियों को थी। शेष उस मार्ग से अनजान थे। यदि कभी अचानक कोई राजा की आक्रामक सेना यहां आ जाए तो उस गुप्त मार्ग से सभी पलायन कर सकते हैं, यह इस गुप्तमार्ग का मुख्य प्रयोजन था। इस गुफा नगर का अतीत अत्यंत भव्य था। सौ वर्ष पूर्व इस स्थल पर ऋषि का आश्रम था और सौ विद्यार्थी उनके पास वेदाध्ययन करते थे। इतना ही नहीं, यहां आश्रम की परंपरा अनेक शताब्दियों से चल रही थी।

मात्र दो दशक पूर्व ही आकस्मिक ढंग से इस नगरी का पता लुटेरों के सरदार को मिला और उसे यह स्थान अपने लिए अत्यंत सुरक्षित लगा। उसने इसे अपना मुख्य अड्डा बना दिया। इस गुफा नगरी में लगभग तीन सौ व्यक्ति आराम से रह सकें, ऐसी यहां व्यवस्था थी। यह स्थान अत्यंत एकान्त और सुखद था।

रुद्रयश ने पद्मदेव की ओर देखकर कहा–'तुम्हारा नाम क्या है?'

'पद्मदेव!'

'तुम्हारी पत्नी का नाम?'

'तरंगलोला।'

रुद्रयश ने तरंगलोला की ओर देखकर कहा–'नाम, रूप, रंग–सभी सुन्दर हैं।'

'परन्तु भाग्य असुंदर है' पद्मदेव ने कहा।

तरंगलोला रुद्रयश की ओर मुड़कर बोली–'भाई! हमको बंदी क्यों बना रखा है? हमारे पास जो संपत्ति थी, वह तुमने ले ली है..... फिर इस नरक जैसे स्थान में हमें क्यों रखा है ?'

रुद्रयश ने हंसते हुए कहा–'तुम अत्यंत भाग्यशाली हो..... दो-तीन दिनों के पश्चात् महामाता काली का रिक्त खप्पर तुम्हारे रक्त और मांस से भर जायेगा और तब तुमको अनन्त सुख की प्राप्ति होगी..... यदि सरदार ने तुम दोनों को बलि के लिए पसन्द नहीं किया होता तो न जाने तुम्हारी क्या दशा होती?'

उसी वक्त एक लुटेरा रज्जु लेकर वहां आ पहुंचा।

रुद्रयश रज्जु हाथ में लेकर बोला–'पद्मदेव! तुम शक्तिशाली हो, जवान हो, इसलिए तुम्हें मैं बंधनग्रस्त करना चाहता हूं..... परन्तु तुमको भोजन आदि नियमित रूप से मिलता रहेगा।'

पद्मदेव मौन रहा। वह मन ही मन समझ चुका था कि यहां से छिटक जाना

सरल नहीं है और यदि प्रयत्न करने पर विफल होना पड़े तो फिर तरंगलोला को अत्याचार का भोग बनना पड़ेगा।

इतने में ही एक स्त्री मदिरा और मांसाहार का थाल लेकर वहां आ पहुंची और रुद्रयश से बोली–'सरदार ने यह भोजन इन नए बन्दियों के लिए भेजा है।'

'अच्छा' कहकर रुद्रयश पद्मदेव से बोला-'पहले तुम और तुम्हारी पत्नी भोजन कर लो।'

तरंगलोला और पद्मदेव-दोनों मौन थे। दोनों को मांसाहार और शराब का प्रत्याख्यान था। पद्मदेव ने तरंगलोला की ओर देखा। तरंगलोला बोली–'स्वामी! मैं तो प्रत्याख्यान करना चाहती हूं। आज उपवास करने की इच्छा है।' पद्मदेव ने तरंगलोला का समर्थन किया और दोनों ने उपवास कर लिया।

पद्मदेव ने रुद्रयश से कहा–'भाई! हम ऐसा भोजन नहीं लेते और आज हम दोनों ने उपवास रखा है।'

'जैसी तुम्हारी इच्छा–हमारी नगरी में मांसाहार और मदिरा सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं' कहकर रुद्रयश ने मांसाहार का थाल, शराब का भांड अपने पत्थर के आसन पर रख दिया।

लुटेरी स्त्री थाल रखकर चली गई।

रुद्रयश ने पद्मदेव को एक खंभे के सहारे बांध दिया। यह देखकर तरंगलोला कांप उठी। वह अपने प्रियतम से लिपटकर बोली–'स्वामीनाथ! मेरे लिए आप इतनी पीड़ा क्यों सहन कर रहे हैं? मैं बदनसीब आपको किस भव में सुख दे पाऊंगी!' फिर रुद्रयश की ओर देखकर बोली–'भाई! मेरे स्वामी को इस प्रकार क्यों बांधते हो? तुम मुझे भी उनके साथ बांध दो..... इनके दुःख का हिस्सा बंटाना मेरा धर्म है' यह कहकर तरंगलोला रो पड़ी।

रुद्रयश भोजन करने में तल्लीन हो गया।

पद्मदेव बोला–'तरंग! मृत्यु के सिवाय यहां से छुटकारा नहीं। मौत सामने खड़ी है, फिर घबराना क्या? रो-रो कर मौत को स्वीकार करने से तो अच्छा है हंसते-हंसते मौत को छाती से लगाएं। इसी में अपनी शोभा है।'

'ओह! नाथ! ऐसे निर्दय स्थल में हम कैसे आ गए? क्या अभी हमारे पापकर्मों का अंत नहीं आया?' फिर वह रुद्रयश की ओर अभिमुख होकर बोली–'भाई मैं कौशाम्बी नगरी के नगरसेठ की पुत्री हूं..... और ये धनदेव सार्थवाह के एकाकी पुत्र हैं..... तुम यदि हमें यहां से मुक्त कर दो तो मैं अपने पिता के नाम एक संदेश लिखकर दूं जिससे कि तुम पिता से जितना धन मांगोगे, वह मिल जाएगा..... हमें इस प्रकार पीड़ित करने से तुम्हें क्या लाभ होगा?'

'बहिन! तुम दोनों को काली मां के बलिदानस्वरूप रखा है। यह लाभ हमारे लिए कम नहीं है..... क्योंकि इससे मां काली हम पर प्रसन्न रहेगी और

हम जो चाहेंगे वह कार्य कर पाएंगे, सर्वत्र सफलता प्राप्त होती रहेगी। ऐसे लाभ को छोड़ देने से विपत्ति को निमंत्रण देना है। तुम जैसी सुंदर बलिदान की जोड़ी को छोड़ देने से मां काली रुष्ट हो जाएगी और यहां बसने वाले सभी परिवारों को नष्ट कर डालेगी। नहीं, बहिन! तुम्हारी बात मैं नहीं मान सकता। तुम एक ओर बैठ जाओ····· संसार की कोई भी शक्ति मां के बलि को छीन नहीं सकती।'

छोटे सरदार की यह बात सुनकर तरंगलोला रो पड़ी····· अरे रे! ऐसे निर्दयी व्यक्ति के पंजों में फंसने से तो नौका सहित गंगा में डूब मरना अच्छा था। ऐसे कलुषित स्थान में मरना, वह भी एक बलि के रूप में, यह तो महान् रौद्र कर्म है। मेरा और मेरे स्वामी का वध होगा, उष्ण रक्त से मां काली का खप्पर भरा जाएगा और ये लुटेरे दोनों के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देवी का प्रसाद मानकर खायेंगे। ओह! ऐसे हमने कौन-से पाप किए हैं? इस प्रकार वह विलाप करने लगी। प्रियतमा की अन्तर्व्यथा से व्यथित होकर पद्मदेव की आंखें भी गीली हो गईं। रुद्रयश सहज रूप में मांसाहार कर रहा था और बीच-बीच में मदिरा की घूंट ले रहा था।

उस समय बंदी बनी हुई पांच-सात स्त्रियां इस गुफा में आईं और तरंगलोला जहां खड़ी थी, वहीं बैठ गईं। उनमें से एक अधेड़ उम्र की स्त्री बोली—'बहिन! कल्पांत मत कर। हम भी तेरी तरह ही इन निर्दयी लोगों के फंदे में पांच-पांच वर्षों से फंसी हुई हैं। रो-रोकर हमारे आंसू सूख गए हैं····· हमें तो बहुत बार यह विचार आता है कि अच्छा होता, देवी के समक्ष हमारी बलि हो जाती तो हम इस नरक से शीघ्र मुक्त हो जाती····· बेटी! तू धीरज रख····· तेरी दर्दभरी वेदना देखकर हमारा हृदय कांप उठा है·····।'

सहानुभूति व्यक्ति को और अधिक रुलाने वाली होती है। तरंगलोला सुबक-सुबक कर रोने लगी।

उसी समय सायंकाल हो गया था। एक सेवक मशाल लेकर आया और गुफागृह की दीवार में बने एक गड्ढे में उसे स्थापित कर चला गया।

तरंगलोला कुछ शांत हुई। रुद्रयश हाथ-मुंह धोने बाहर गया। एक स्त्री भोजन के सारे पात्र लेकर चली गई। रुद्रयश कुछ ही क्षणों के बाद लौट आया और अपने स्थान पर बैठ गया।

उस प्रौढ़ स्त्री ने तरंगलोला के रूप-लावण्य को देखकर कहा—'बहिन! तू कोई बड़े घराने की कन्या हो····· राजा की राजकुमारी हो, ऐसा प्रतीत होता है। तू किस ओर जा रही थी? क्या तेरे साथ रक्षक नहीं थे?'

तरंगलोला उन पांचों स्त्रियों के सामने देखकर बोली—'बहिन! मेरी कथा बहुत विषम है। मैं क्या बताऊं? अरे! हम तो विगत जन्म से वेदना का भार ढो रहे हैं····· हमारे वियोग का अन्त आया और उसी क्षण दूसरी विपत्ति आ गई।'

'गत जन्म की विरह-व्यथा?'

'हां, बहिन! हमारा वृत्तान्त अत्यन्त करुण है। गंगा के जल से भरा हुआ एक सुन्दर सरोवर था। उसके आसपास सुंदर वन प्रदेश था। वन में अनेक प्रकार के पशु-पक्षी बसते थे। मैं चक्रवाकी थी..... मेरे पति चक्रवाक थे। एक दिन एक गजराज सरोवर में जलक्रीड़ा करने आया..... हम दोनों कल्लोल कर रहे थे। हम इतने सुखी थे कि एक-दूसरे की छाया बनकर सुखी जीवन जी रहे थे..... हमारी मस्ती..... हमारा प्रेम..... हमारा सहवास और हमारे कल्लोल एक महाकाव्य जैसा मधुर था।'

पांचों स्त्रियां दत्तचित्त होकर जीवन-वृत्तान्त सुन रही थीं। दुर्दान्त लुटेरा रुद्रयश भी इस कथा में रस ले रहा था।

तरंगलोला बोली—'हाथी की जलक्रीड़ा देखकर हम आनन्दित हो रहे थे..... जलक्रीड़ा कर गजराज किनारे आया। हम दोनों ऊंचे उड़ गए..... दूर से एक पारधी ने तीर छोड़ा। वह बाण मेरे प्राणेश्वर को लगा..... उनकी एक पांख कटकर नीचे गिर गई..... वे लहूलुहान होकर रेतीले किनारे पर गिर पड़े..... हाथी भाग गया..... मैं वेदनाभरे हृदय से स्वामी की काया पर गिरकर अपने पांखों से उन्हें सहलाने लगी... परन्तु वे निष्प्राण हो गए थे..... वह पारधी वहां आया..... उसने लकड़ियों की एक चिता बनाई। उस पर मेरे प्राणनाथ को रखकर उसमें अग्नि लगा दी। मैं आकाश में चक्कर लगा रही थी..... रोती-रोती नीचे देख रही थी। चिता जल उठी। मैंने सोचा, प्रियतम के बिना मैं कैसे जी पाऊंगी और यदि वे दूर चले जायेंगे तो मैं उनसे मिलूंगी कैसे? यह सोचकर संपूर्ण वेदना के साथ मैं भी चिता में कूद पड़ी।.....'

पांचों स्त्रियों के नयन आंसुओं से भीग चुके थे। रुद्रयश भी गहरे विचार में डूब गया। वह मनोयोगपूर्वक वृत्तान्त सुन रहा था।

तरंगलोला ने फिर वर्तमान जीवन की सारी घटना, जातिस्मृति ज्ञान की कथा, प्रियतम को पाने कार्तिकी पूनम को चित्रांकन पट्टों का प्रदर्शन..... चित्रांकन देखते ही उसी नगरी में जन्मे प्रियतम को भी विगत जन्म की स्मृति होने की घटना..... दोनों के मिलन और गान्धर्व-विवाह की पूरी बात बताई।

यह सारा सुनकर वह प्रौढ़ स्त्री बोली—'बहिन! कठोरतम हृदय को भी पानी-पानी कर देने वाली है तेरे जीवन की कथा।' परन्तु जहां हृदयविहीन लुटेरे बसते हों, वहां कैसी करुणा और दया! मैं तो चाहती हूं कि तेरी वेदना शांत हो, दूर हो।

तरंगलोला की पूरी बात सुनकर रुद्रयश भी कांप उठा। उसके हृदय में भारी हलचल होने लगी। उसका पाषाण हृदय चूर-चूर-सा होने लगा।

पांचों स्त्रियां वहां से विदा हुईं।

रुद्रयश ने खड़े होकर तरंगलोला से कहा–'बहिन! तू कोमलांगी है। कब तक खड़ी रहेगी? यह स्थान तेरे योग्य नहीं है, यह मैं जानता हूं, परन्तु दूसरा कोई उपाय नहीं है। मैं एक कंबल ला देता हूं। तू उसको बिछाकर बैठ जा।'

रुद्रयश ने एक कंबल मंगवाया। तरंगलोला उसको एक ठीक स्थान पर बिछाकर बैठ गई।

तरंगलोला की वेदना का अन्त नहीं था। वह समूचे दिन खड़ी रही थी। सामने खंभे से प्रियतम बंधे हुए थे। ऐसी विकट स्थिति में वह भला कैसे बैठ पाती?

वह स्वामी की ओर देखकर बोली–'प्रियतम! आपकी यह दशा देखकर बैठने का मन ही नहीं होता।'

'प्रिये तुम मेरी चिन्ता मत करो। मैं पुरुष हूं। विपत्ति में धैर्य रखना ही मेरा पौरूष है। तू घड़ी भर आराम कर·····'

परन्तु तरंगलोला पुनः स्वामी के पास खड़ी हो गई।

देवी के मंदिर में आरती के स्वर सुनाई दे रहे थे। कोलाहल शांत हुआ। रात्रि का दूसरा प्रहर प्रारंभ हुआ। वहां बैठे हुए अन्य साथियों से रुद्रयश बोला–'अब तुम सभी जा सकते हो।'

सभी साथी चले गए।

मध्यरात्रि का समय हुआ। तरंगलोला अभी तक प्रियतम के पास ही खड़ी थी।

मशालें जल रही थीं। उनका मीठा प्रकाश बिखर रहा था। सर्वत्र शांत वातावरण था।

रुद्रयश तरंगलोला की ओर देखकर बोला–'बहिन! खड़ी-खड़ी थक जाओगी। कुछ विश्राम कर लो।'

'भाई! इस प्रकार जकड़े हुए पति को देखकर कौन पत्नी विश्राम लेना चाहेगी? तुम मेरी चिन्ता मत करो। मुझे खड़े रहने में आनन्द ही आनन्द है। तरंगलोला ने कहा।'

ये शब्द सुनकर रुद्रयश का हृदय खलबला उठा··· वह विचारों में डूब गया।

१९. छुटकारा

कोई क्षण ऐसा आता है जब पाषाण हृदय भी कोमल पंखुड़ी जैसा बन जाता है। तरंगलोला के अतीत जन्म की कथा सुनकर रुद्रयश विचार में मग्न हो गया····· उसको उसके पिता की स्मृति हो आई····· अपना धर्म प्रत्यक्ष हुआ····· अपनी वर्तमान स्थिति अखरने लगी। वह अपने आसन से उठा और पद्मदेव की ओर अग्रसर होकर बोला–'श्रेष्ठीपुत्र! आप एक निर्दय और जालिम

लुटेरों के पंजों में फंसे हैं..... आप जैसे पवित्र जवान तथा सुकुमारिका तरंगलोला के रक्त से मंदिर का मंडप दूषित हो, यह उचित नहीं है। मैं आपको बंधन-मुक्त कर इस वनप्रदेश के छोर तक पहुंचा देता हूं.....'

तरंगलोला हर्ष से नाच उठी। वह बोली—'शासनदेव तुम्हारा कल्याण करें।'

रुद्रयश ने पद्मदेव के सारे बंधन खोल दिए। वह बोला—'आप दोनों पहले कंबल पर बैठें..... मैं आपको गुप्तमार्ग से बाहर ले जाऊंगा..... परन्तु उससे पूर्व मैं सारी जांच-पड़ताल कर लेता हूं..... ऐसे तो अब सभी निद्राधीन होंगे और शराब के नशे में धुत होकर पड़े होंगे.....'

'भाई! तुम्हारा यह उपकार अविस्मरणीय होगा..... परन्तु तुम्हारा तो कोई अहित नहीं हो जाएगा?'

'मैं भी आपके साथ ही साथ इस नरक से निकल जाऊंगा। तुमको मुक्त कर वापस आऊंगा तो सरदार मेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालेगा। अब आधी रात बीत चुकी है..... तुम शांति से बैठे रहो..... मैं निरीक्षण कर आऊं.....।'

तरंगलोला बोली—'स्वामिन्! आप तो अत्यंत शांत बन गए थे।'

'मैं भी तो क्या कर सकता था? यदि बल प्रयोग कर छूटने का प्रयत्न करता तो तुम्हारी जिन्दगी पर खतरा मंडराने लग जाता। इसलिए मैं केवल नमस्कार-महामंत्र का जाप करते-करते खड़ा था। परन्तु तुम्हारी कथा ने इस दुर्दान्त दस्यु के हृदय को बदला है, ऐसा प्रतीत होता है।' पद्मदेव बोला।

दोनों राहत का अनुभव करते हुए कंबल पर बैठ गए। मुक्ति का आनन्द पशु-पक्षियों को भी हर्षविभोर कर देता है तो भला मनुष्यों का तो कहना ही क्या?

लगभग अर्धघटिका के पश्चात् रुद्रयश गुफागृह में आया और धीरे से बोला—'मार्ग निष्कंटक है। तुम दोनों मेरे पीछे-पीछे शांतभाव से चले आओ, परस्पर बातचीत न करते हुए, आवाज न करते हुए चलने में सुरक्षा है। हमें प्रभात होने तक चलना ही चलना है। अन्यथा सरदार पदचिह्न देखकर हमें पकड़ सकता है।'

'हम तैयार हैं', कहकर पद्मदेव खड़ा हुआ। तरंगलोला भी खड़ी हो गई।

रुद्रयश ने अपने हाथ में दो लकड़ी के खंड ले रखे थे। वह आगे चला। दोनों उसके पीछे चलते-चलते गुफागृह से बाहर निकले।

गुफानगरी शांत थी..... मार्ग में भी कोई नहीं था..... फिर भी रुद्रयश चारों ओर देखता हुआ, चौंकन्ना होकर अंधेरे में धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। पद्मदेव और तरंगलोला भी उसके पीछे-पीछे सावधानीपूर्वक चल रहे थे।

गुप्त मार्ग संकरा और गुफा जैसा था। उसके नुक्कड़ पर पहुंचकर रुद्रयश बोला—'आप झुककर चलें अन्यथा सिर छत से टकराएगा। मार्ग छोटा और

अंधकारमय है। मैं प्रकाश करता हूं,' यह कहकर उसने लकड़ी के दोनों टुकड़ों को परस्पर घिसा, दोनों सुलग उठे। प्रकाश होने लगा।

तीनों उस संकरे मार्ग से झुककर चलने लगे। प्रकाश क्षीण था। तीनों धीरे-धीरे चलते-चलते गुफा मार्ग के बाहर के द्वार पर आ पहुंचे। रुद्रयश एक लोहे की कील को धीरे-धीरे घुमाने लगा। कुछ ही क्षणों में द्वार खुल गया, शिला खिसक गई। तीनों बाहर आ गए। रुद्रयश ने गुप्त तरीके से द्वार पुनः बंद कर दिया।

अंधेरी रात परन्तु स्वच्छ आकाश····· चंद्र का मंद प्रकाश चारों ओर छिटक रहा था।

रुद्रयश इस प्रदेश के सभी मार्गों का ज्ञाता था, इसलिए वह एक पगडंडी के मार्ग से आगे बढ़ा। पद्मदेव और तरंगलोला भी उसके पीछे-पीछे चलने लगे।

कुछ दूर जाने पर हिंस्र पशुओं के शब्द सुनाई देने लगे। पद्मदेव बोला—'मित्र! हिंस्र पशुओं के शब्द आ रहे हैं।'

'हां भाई! परन्तु डरने की कोई बात नहीं है। मेरी कमर में छुरिका है और रास्ते में सूखी लकड़ी मिल जाएगी' रुद्रयश ने कहा।

वनप्रदेश गाढ़ और भयंकर था। ताराओं का क्षीण प्रकाश गाढ़ वन के अंधकार का भेदन करने में असमर्थ था। किन्तु इन्हें अंधकार में देखने की आदत पड़ गई थी।

रुद्रयश चाहता था कि सूर्योदय से पूर्व वनप्रदेश को लांघकर मैदान में पहुंच जाना लाभदायक होगा। तब पीछे का कोई भय नहीं रहेगा।

तीनों विश्राम किए बिना ही अविरल गति से आगे बढ़ रहे थे। कांटे, पत्थर, ऊबड़-खाबड़ भूमि उनके लिए गति-रोधक नहीं थे।

समय के साथ-साथ तीनों चल रहे थे।

प्रभात का समय हुआ। पौ फटी। पक्षियों का कलरव सुनाई देने लगा। प्रातःकाल की पवन-लहरें ताजगी और प्रसन्नता बिछाने लगीं।

वनप्रदेश पूरा हुआ····· सामने पर्वतों वाली भूमि दिखाई पड़ी।

रुद्रयश बोला—'तुम दोनों थक गए, ऐसा प्रतीत हो रहा है। किन्तु इस प्रकार चले बिना पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। अब सामने दीखने वाली टेकरी के पास पहुंचने पर मैदान दिखाई देगा और फिर कोई भय नहीं है।'

पद्मदेव बोला—'मित्र! तुमने हमें जीवनदान दिया है····· मेरी एक प्रार्थना है। तुम्हें स्वीकार करनी होगी।'

रुद्रयश ने हंसते हुए कहा—'पहले हम उस टेकरी पर पहुंच जाएं। वहां हमारे विषय में किसी को कोई पता नहीं लगेगा। फिर भी दस्युराज के हाथ लंबे हैं····· इसलिए भयमुक्त होना हमारा पहला कदम है।'

रुद्रयश का कथन उपयुक्त था। प्रभात वेला की एक घटिका बीतते-बीतते

वे तीनों एक टेकरी के पृष्ठभाग में रहे मैदान में पहुंच गए।

तीनों एक वृक्ष के नीचे विश्राम लेने बैठे····· तरंगलोला के दोनों चरण सूज गए थे····· पद्मदेव के चरण कांटों से लहूलुहान हो गए थे।····· फिर भी मुक्ति के आनन्द के आगे यह दर्द गौण बन गया था।

रुद्रयश बोला–'बहिन! कल तुमने उपवास किया था। मैं रास्ते से कुछेक फल ले आया हूं····· तुम उन्हें खाकर अपनी क्षुधा शांत करो····· अब हम संपूर्णरूप से निर्भय स्थान में पहुंच चुके हैं। देखो, यहां से आधे कोस की दूरी पर एक सुन्दर सरोवर है····· वहां प्रातःकार्य से निवृत्त होकर फिर तुम दोनों आगे बढ़ जाना····· कुछ दूरी पर चार-पांच गांव भी हैं। किसी भी गांव में कौशांबी का रास्ता पूछ लेना।'

पद्मदेव बोला–'मित्र मेरी प्रार्थना·····।'

'बोलो·····।'

'तुम भी हमारे साथ चलो····· जीवनदाता का सत्कार करने का मुझे अवसर दो' पद्मदेव ने कहा।

'हां भाई! तुम हमारे साथ ही चलो····· तुम अब लुटेरों के सरदार के पास तो जाओगे नहीं····· तो हमारे वहीं रहना। पिताजी तुमको किसी धंधे में जोड़ देंगे····· वे तुम्हारा उपकार कभी नहीं भूलेंगे।' तरंगलोला ने कहा।

'बहिन! तुम्हारी करुण कथा ने मेरे हृदय के पंख खोल डाले हैं····· जब तक मैं अपने पापों का प्रायश्चित्त नहीं कर लूंगा तब तक मुझे शांति नहीं मिलेगी····· मैं अपने मार्ग पर चला जाऊंगा।'

'मित्र! तुम्हारी भाषा संस्कारित-सी लग रही है। तुम यथार्थ में लुटेरे नहीं हो। क्या परिचय दोगे?' पद्मदेव ने कहा।

रुद्रयश एक गहरा निःश्वास छोड़ते हुए बोला–'मेरा परिचय स्वयं मुझको ही मथने वाला है। मेरे पिताजी वाराणसी नगरी के महापंडित हैं····· मैं उनका इकलौता पुत्र हूं। मेरा नाम रुद्रयश है। किन्तु बुरी संगति के कारण मैं अपने कुलधर्म के प्रति सजग नहीं रहा और यौवन के प्रारंभ होते ही चोरियां, लूट-खसोट आदि में लग गया। पिताजी को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने मुझे कुलकलंक मानकर घर से निकाल दिया। एक गांव में लुटेरे सरदार से परिचय हुआ और मैं उनका साथी बन गया। मैं अपने कुलधर्म-जैनधर्म को भूल गया····· वृद्ध पिता की ममता भी भूल गया····· मांसाहार, शराब, परनारीगमन, जुआ, लूट, हिंसा आदि क्रियाओं में तन्मय हो गया। यही मेरा परिचय है।'

'रुद्रयश! तो तुम हमारे साथ ही चलो। मैं तुम्हारा पूर्ण सहयोग करूंगा।' पद्मदेव ने कहा।

तरंगलोला ने भी खूब आग्रह किया, परन्तु रुद्रयश अपने निश्चय से

विचलित नहीं हुआ। दोनों को सरोवर की ओर प्रस्थित करा स्वयं दूसरे मार्ग पर आगे बढ़ गया।

मार्ग वृक्षशून्य था····· अपने उत्तरीय में फलों को बांध तरंगलोला पद्मदेव के पीछे-पीछे चल पड़ी। परन्तु जब तक मन में भय था, मौत सिर पर मंडरा रही थी, तब तक थकान का अनुभव नहीं हो रहा था····· और भय दूर होते ही थकान एक साथ शरीर पर उतर आई और अब एक कदम चलना भी भारी हो गया।

सौ-पचास क़दम चलने के पश्चात् तरंगलोला बोली—'स्वामीनाथ! मेरे पैर सूज कर खंभे जैसे हो गए हैं। अब मैं एक पैर भी आगे नहीं चल सकती।'

'प्रिये! यहां तो कोई वृक्ष भी दिखाई नहीं देता····· धूप तीव्र होने के बाद चलना कठिन हो जाएगा····· बायें हाथ की ओर कुछ वृक्ष दीख रहे हैं, वहां कोई जलाशय होना चाहिए। हम उसी ओर चलें' यह कहकर पद्मदेव ने तरंगलोला का हाथ पकड़ा।

दोनों चलने लगे····· परन्तु तरंगलोला के पैर उठ नहीं रहे थे। यह देखकर पद्मदेव ने प्रियतमा को दोनों हाथों से उठाकर कंधे पर बिठा दिया····· मानो कि फूलों का गुच्छा उठाया हो····· और वह वृक्षों की ओर चल पड़ा।

तरंगलोला बोली—'स्वामिन्! मेरा भार उठाकर आप चलें, यह मुझे पसन्द नहीं है। मुझे नीचे उतारो·····'

'पगली मैं पुरुष हूं····· पत्नी भार नहीं होती, वह तो प्रेरणा है····· अरे! वह भी भार नहीं होती जो पुरुष के मन को भा जाती है····· और तुम जैसी सुंदरी तो भार कैसे?·····'

बीच में ही तरंगलोला बोली—'नहीं, प्राणेश! मुझे नीचे उतारो····· नहीं तो मैं सौगंध दूंगी।'

'परन्तु तुम चल नहीं पाओगी।'

'तुम्हारा हाथ पकड़कर अवश्य चल सकूंगी,' तरंग ने कहा।

पद्मदेव ने पत्नी को नीचे उतारा। दोनों धीरे-धीरे चलने लगे।

वृक्षराजी के पास पहुंच कर उन्होंने देखा कि एक निर्मल जलवाली छोटी सरिता बह रही है।

दोनों ने प्रातःकर्म संपन्न किया। पद्मदेव गांव की खोज में एक टेकरी पर चढ़ा और अत्यंत हर्ष के साथ तरंगलोला के पास आकर बोला—'प्रिये! यहां से लगभग एक कोस की दूरी पर गांव दीख रहा है। हम वहां चलें और दो-चार दिन वहीं विश्राम करें।'

वे आगे बढ़े। आगे एक तालाब के पास आये। दोनों ने पुनः हाथ, पैर, मुख धोए। फिर दोनों ने ठंडे पानी से आंखों को छिड़का। फिर जलपान किया।

ग्राम-नारियां जल भरने इसी तालाब की ओर आ रही थीं। इस जोड़ी को

देख वे तालाब से कुछ दूर ही खड़ी रह गईं। उनके नयनों में आश्चर्य उभर रहा था..... ऐसी सुंदर जोड़ी किसी प्रकार के वाहन के बिना यहां कैसे आ गई?

तरंगलोला ने एक युवती से पूछा–'बहिन गांव में जाने का रास्ता कौन-सा है?'

बहिन ने रास्ता बताया और दोनों उसी ओर चल पड़े।

पद्मदेव ने देखा कि गांव दुर्ग से घिरा हुआ नहीं है, परन्तु विविध लताओं से शोभित थोर की बाड़ गांव के चारों ओर है और तूंबे उन बेलों पर लटक रहे हैं। विविध फूल भी वहां शोभित थे।

दोनों गांव में प्रविष्ट हुए।

२०. वेदना की बदली

तरंगलोला के अलंकारों की पेटी लेने त्वरित चरणों से चलती हुई सारसिका मुख्य मार्ग पर आई तब उसके मन में यह विचार उभरा कि..... तरंग का यह साहस अत्यंत भयंकर है..... और यदि वह अलंकारों के साथ पलायन करेगी तो पद्मदेव और तरंग–दोनों का अपवाद होगा और उनका जीवन कलंकित हो जाएगा..... अब क्या करूं? सखी ने मुझे विश्वास के साथ भेजा है। यदि मैं उसका कार्य संपादित न करूं तो वह कितनी दु:खी होगी?

ऐसे परस्पर विरोधी विचार सारसिका के हृदय को मथ रहे थे और मनुष्य जब विचारों की तरंगों में फंस जाता है तब उसकी गति स्वयं मंद हो जाती है। सारसिका की त्वरित गति स्वयं मंद हो गई।

राजमार्ग पर कुछ दूर चलने पर अचानक उसके कानों में ये शब्द पड़े–'कौन? सारसी?'

सारसिका चौंक कर वहीं खड़ी रह गई। उसके पिता घर जाने के लिए सामने से आ रहे थे। सारसिका अब स्वयं को छुपाने की स्थिति में नहीं थी। वह बोली–'हां, पिताजी.....'

'अभी तुम किस ओर गई थी?' पिता ने निकट आकर पूछा।

'अपनी सखी के एक प्रयोजन के लिए गई थी..... परन्तु बहुत प्रतीक्षा करने पर भी कार्य नहीं हुआ।' सारसिका ने झूठी बात कही।

'तेरा रात्रि में इस प्रकार अकेली आना क्या उचित है? ऐसा कौन सा कार्य था?'

'उसके सगपन की चर्चा चल रही है। तरंग की इच्छा थी कि मैं धनदेव सेठ के पुत्र पद्मदेव कैसा है, इसको देख आऊं। इस बात की किसी को खबर न लगे, इसलिए इस समय जाना पड़ा। परन्तु पद्मदेव नहीं मिलें। इतने विशाल भवन में मैं कैसे जाऊं, इसी चिन्तन में मैं बाहर खड़ी-खड़ी सोचती रही। कोई भवन से बाहर

आया ही नहीं..... अन्त में थककर वहां से निकल गई।'

'देख बेटा! अब तो सारे बाजार भी बंद हो गए हैं और नगरसेठ का भवन भी बंद हो गया होगा। तू घर चल..... प्रातः वहां जाना।'

'किन्तु मेरी सखी प्रतीक्षा कर रही होगी।'

'इसकी कोई चिन्ता नहीं है। तू अभी अकेली वहां जाए, यह उचित नहीं होगा।' पिताश्री ने कहा।

सारसिका ने बात को उचित ढंग से रखा था, फिर भी पिता के साथ घर जाने के सिवाय दूसरा रास्ता नहीं था। 'अच्छा' कहकर वह पिता के साथ घर की ओर चल पड़ी। पिता ने चलते-चलते कहा-'ऐसा कार्य तो दिन में होना चाहिए। प्रातः तू जाकर पद्मदेव को देखकर फिर अपनी सखी को बता देना।'

सारसिका कुछ नहीं बोली। वह मन ही मन सोच रही थी-सखी प्रतीक्षा में वहीं खड़ी होगी..... वह अकुलाहट का अनुभव भी कर रही होगी..... परन्तु अब क्या हो? उसके गृहत्याग की बात तो किसी के समक्ष नहीं की जा सकती।

सारसिका भारी हृदय से घर आई और मां के साथ कुछ बतिया कर शय्या पर जा सो गई। नींद कहां से आए? प्रातः सेठानी मुझे और तरंग को न देखकर कितनी चिंता करेगी? और यह बात कब तक छुपाई जा सकेगी? इससे तो अच्छा होता कि तरंगलोला वहां से लौट आती..... इस प्रकार के विचारों में डूबती-उतरती सारसिका शय्या पर करवटें बदलती रही। बहुत देर बाद वह निद्राधीन हुई। उसे यह ज्ञात नहीं था कि इस समय दोनों प्रेमी हृदय एक नौका में बैठकर यमुना के जल-प्रवाह पर अठखेलियां करते हुए प्रवास कर रहे हैं।

प्रातःकाल होते ही वह उठी। माता भी जाग गई थी। मां प्रातःकाल के घर के कामों में लग गई थी। वह झाड़ू से मकान की सफाई में लग गई थी। सारसिका ने सोचा, अरे मेरे जैसी जवान लड़की घर में हो और मां को घर का सारा काम करना पड़े? नहीं.....नहीं.....नगरसेठ की कन्या के प्रति ममता और प्रेम है तो क्या उसके समक्ष अपने कर्त्तव्य को भी भुला देना चाहिए? बेचारे भोले मां-बाप इस विषय में मुझे कुछ कहते नहीं.....संतान को जिस प्रकार सुख हो, उसी प्रकार करने में माता-पिता प्रसन्न रहते हैं?.....

ये विचार आते ही सारसिका मां के पास दौड़ी और मां के हाथ से बुहारी लेकर बोली–'मां! यह सब आप क्यों करती हैं?'

'बेटी! घर का काम तो घर के आदमी ही करेंगे?'

'आप माला-जाप करें। मैं कुछ ही समय में सारा काम निपटा देती हूं।' यह कहकर सारसिका घर की सफाई में लग गई।

उसी समय मकान के दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी। सारसिका द्वार

खोलने गई। उसने देखा नगरसेठ के वहां से रथ आया है और रथिक वहां दरवाजे पर खड़ा है।

सारसिका ने पूछा—'क्यों?'

'सेठानीजी आपको याद कर रही है।'

'बहिन तरंग तो कुशल है न?'

'मैंने बहिन तरंग को तो देखा नहीं। सेठानी की आज्ञा से मैं यहां आया हूं।'

'जरा ठहरो। मैं तो आने ही वाली थी।' कहकर सारसिका घर में गई। कुछ क्षणों पश्चात् मां की आज्ञा ले बाहर आई और रथ में बैठ गई।

नगरसेठ के घर पर प्रतिदिन सेठ और सेठानी प्रातः जल्दी उठकर प्रतिक्रमण कर रहे थे····· पुत्रवधुएं भी प्रातः कार्य कर रही थीं।

सेठानी ने तरंगलोला को न देखकर उसके खंड की ओर ऊपर गई। उसने सोचा, तरंगलोला कभी विलम्ब से नहीं उठती, आज उठने में विलम्ब कैसे हो गया? क्या ज्वर, सुस्ती या अन्य कुछ·····? अरे! सारसिका भी नहीं उठी! वह तो बहुत नियमित है। इस प्रकार विचार करती-करती सेठानी सुनंदा पुत्री तरंगलोला के कक्ष के पास पहुंची····· द्वार बंद था····· उसने धक्का देकर द्वार खोला····· भीतर कोई नहीं था। तत्काल उसे याद आया····· कल दोनों छत पर गई थीं····· क्या अभी तक वहीं सो रही हैं? यह याद आते ही सेठानी छत पर गई····· छत पर कौन हो? दासी पहले ही दोनों शय्याएं छत से उठाकर नीचे ले चली थीं। छत साफ थी।

दोनों कहां गई?

बेचारी मां को ऐसी कल्पना कहां से हो कि वह जहां अपनी प्रिय पुत्री की खोज कर रही है वहीं वह अभी क्रूर डाकुओं के पंजों में फंस गई है····· अपने पूर्वभव के पति के साथ।

सुनंदा देवी धीरे-धीरे नीचे उतरी। उसने सोचा, संभव है दोनों सखियां जल्दी उठकर बाहर निकल गई हों····· इतना होने पर भी मां का मन कैसे माने? उसने तत्काल रथिक को सारसिका के घर जाने की आज्ञा दी और सारसिका को बुलाने का आदेश दिया।

कन्या के विषय में माता को अन्य कोई संशय होने का अवसर नहीं था····· क्योंकि कन्या संस्कारित थी····· अत्यंत लाड़-प्यार में पली-पुसी होने पर भी बड़ी विनीत और आज्ञाकारी थी।

सुनंदा ने सोचा संभव है तरंग सारसिका के घर चली गई हो! रथ आने के बाद·····

सेठजी प्रातराश लेकर बैठे ही थे कि राजदरबार से उन्हें बुलावा आया और

वे मुनीम को अत्यावश्यक सूचनाएं दे एक रथ में बैठकर राजभवन की ओर चल दिए।

सेठजी को गए कुछ ही समय बीता था कि वहां सारसिका को लेकर रथ भवन के विशाल प्रांगण में आ खड़ा हुआ।

चिंतातुर सेठानी द्वार के पास ही खड़ी थी। सारसिका को रथ से उतरते देख सेठानी का मन कुछ शांत हुआ..... परन्तु यह कैसे? सारसिका अकेली क्यों? क्या तरंगलोला वहीं रुक गई? माता-पिता की आज्ञा के बिना वह कभी कहीं आती-जाती नहीं।

सारसिका निकट आई। सेठानी ने पूछा–'अरे! अकेली क्यों? तरंग तेरे वहां अकेली रुक गई?'

यह प्रश्न सुनते ही सारसिका समझ गई कि तरंगलोला लौटी नहीं है..... लगता है अपने प्रियतम के साथ चली गई। यदि यह बात फैलेगी तो नगरसेठ पर कलंक आयेगा और लोग अंगुली-निर्देश करेंगे तब नगरसेठ को शर्मिन्दा होना पड़ेगा..... अपना सिर झुकाए चलना होगा। वह गंभीर स्वरों में बोली–'आप मेरे साथ पुत्री के कक्ष में चलें..... वहां सारी बात बताऊंगी.....'

एकान्त में बात..... सेठानी को आश्चर्य हुआ.....वह मौनभाव से सारसिका के साथ ऊपरी मंजिल पर गई। सारसिका ने पूछा–'बापू! कहां हैं?'

'वे तो अभी-अभी राजभवन में गए हैं.....'

'फिर कब लौटेंगे?'

यह कहा नहीं जा सकता। परन्तु तू ऐसे प्रश्न क्यों कर रही है? तरंगलोला कहां गई है?

'देखो मां! आपको धैर्य रखना होगा..... तरंगलोला कहां है? मैं जानती हूं..... परन्तु उसका पता लगाने मुझे एक स्थान पर जाना होगा..... वहां से आने के बाद मैं आपको सारी बात बताऊंगी..... अन्यथा तरंगलोला को साथ लेकर आऊंगी' सारसिका ने कहा।

'परन्तु वह है कहां?'

'यह ज्ञात करने के लिए ही तो मैं जा रही हूं।'

'चल, मैं भी तेरे साथ चलती हूं।'

'मां! प्रश्न विचित्र है। पहले मुझे जांच लेने दो..... फिर मैं आपको सारी बात बता दूंगी..... बात ऐसी है कि आप तथा बापू के सिवाय यह बात कोई जान न पाए.....' यह कहकर सारसिका वहां से मुड़ी।

सेठानी अवाक् बनकर वहीं खड़ी रह गई..... यह सारा क्या है? तरंगलोला कहां है? यहीं है तो फिर सारसिका किसकी खोज करने जा रही है? कहां जा रही है? वह इतनी गंभीर क्यों दीख रही है? क्या बेटी को आपेक्षक

नाम की व्याधि हो गई है? क्या तरंग सारसिका के घर भोजन करने रुक गई है?

सारसिका तो सरपट सोपान श्रेणी से उतर कर नीचे आ गई।

सेठानी जब नीचे आई तब तक सारसिका भवन के बाहर निकल चुकी थी। सेठानी कुछ भी नहीं समझ सकी। दूसरों के कानों तक बात न जाए..... ऐसी क्या बात हो सकती है? क्या तरंगलोला ने आत्महत्या कर ली? क्या किसी साध्वी के पास चली गई? इस प्रकार चिन्तामग्न होकर वह अनहोने प्रश्नों के साथ गंभीर होकर वहीं एक झूले पर बैठ गई? सारसिका की प्रतीक्षा करने लगी।

प्रतीक्षा की घड़ियां दीर्घ होती हैं। सेठानी बार-बार जाली से मार्ग की ओर देख रही थी।

सारसिका जब राजमार्ग पर आई तब तक लोगों का आवागमन प्रचुर मात्रा में हो गया था। वाहनों का आना-जाना भी हो रहा था।

सारसिका ने आकाश की ओर देखकर यह अनुमान लगा लिया था कि दिवस का दूसरा प्रहर कभी का प्रारंभ हो चुका है।

वह धनदेव सेठ के भवन के पास पहुंची और मुख्य द्वार से भीतर देखते ही चौंकी। धनदेव सेठ स्वयं वहां खड़े थे और पद्मदेव के मित्रों से पद्मदेव की खोज करने के लिए कह रहे थे। भवन में अनेक व्यक्ति पद्मदेव की टोह में निकल पड़े थे।

सारसिका को जो जानना था, वह ज्ञात हो गया..... पद्मदेव और तरंगलोला–दोनों रात में ही पलायन कर गए हैं..... किस दिशा में गए हैं?

उसी समय एक वृद्ध मुनीम जैसा व्यक्ति गंभीर वदन से बाहर निकला। वह निकट आया तब सारसिका ने पूछा–'पूज्यश्री.....'

कोमल मधुर स्वर!! वृद्ध मुनीम ने सारसिका की ओर देखा। सारसिका ने पूछा–'सेठजी के भवन में आज इतनी हलचल क्यों है? क्या छोटे सेठजी का विवाह होने वाला है?'

'ओह! पुत्री! आज के लड़कों पर कोई विश्वास नहीं होता। कल रात्रि में छोटे सेठ बिना कुछ बताए, कहीं चले गए हैं। एकाकी पुत्र का इस प्रकार चला जाना माता-पिता के लिए चिन्ता का कारण हो जाता है..... हम सभी उनकी खोज में व्यग्र हो रहे हैं।' वृद्ध मुनीम ने चलते-चलते कहा।

सारसिका तत्काल वहां से नगरसेठ के भवन की ओर चल पड़ी। दिन का दूसरा प्रहर पूरा हो उससे पूर्व ही सारसिका भवन में प्रविष्ट हो गई। राजभवन से सेठजी लौट आए थे। सुनंदा ने सेठजी से अभी कुछ नहीं कहा था। उसे भय था कि तरंगलोला बाहर गई है, यह जानते ही सेठजी भोजन नहीं करेंगे।

नगरसेठ ने भोजन करते-करते पूछा–'तरंग कहां है? क्या कर रही है?'

'आज वह अपनी सखी के घर भोजन करने गई है।'

सेठ और अधिक न पूछकर, भोजन में मग्न हो गए।

सारसिका आई तब तक सेठजी भोजन से निवृत्त होकर खड़े हो गए थे।

सारसिका को देखते ही सेठानी सुनंदा ने पूछा–'क्या हुआ?'

'आप तथा सेठजी–दोनों तरंग के चित्रकक्ष में चलें।' कहकर सारसिका अग्रसर हुई।

सेठ कुछ समझ नहीं सके, इसलिए पत्नी से पूछा–'क्या बात है?'

'सारसिका कुछ कहना चाहती है..... चलें.....'

सेठ-सेठानी-दोनों चित्रकक्ष में सारसिका के पीछे-पीछे आए।

दोनों के भीतर आने के पश्चात् सारसिका ने चित्रकक्ष का द्वार बंद कर कहा–'मैं खोज कर आई हूं..... मेरा संशय सही हुआ है..... परन्तु जब तक मैं आपको पूरी बात नहीं बताऊंगी, तब तक आप कुछ भी नहीं जान पायेंगे।'

सेठ कुछ नहीं समझ पा रहे थे। वे बोले–'तेरा कैसा संशय? बात क्या है? क्या समझना है? मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है।'

'मेरी सखी अपने पूर्वभव के पति के साथ कल रात्रि में चली गई, यह बात कहना चाहती हूं.....'

'पूर्वभव का पति? सारसिका! यह तू क्या कह रही है..... ऐसा कभी हो नहीं सकता..... मेरी तरंग.....'

बीच में ही सारसिका बोल पड़ी–'बापू! आप उतावले न हों। पहले सारी बात सुनें।' कहकर सारसिका ने तरंगलोला की पूर्वभव की सारी बात कही। उस दिन उपवन में उसको हुए जातिस्मरण ज्ञान की, फिर पूर्वभव के पति को प्राप्त करने के उद्देश्य से चित्रित चित्रपट्टों की, उन चित्रों को देखकर पद्मदेव को हुए जातिस्मृति ज्ञान की आदि सारी बातें संक्षेप में कह सुनाई। अन्त में धनदेव सेठ के वहां देखी-सुनी बात भी बता दी।

सेठ-सेठानी–दोनों वज्राहत से हो गए थे। वे अवाक् बन गए। कुछ क्षणों पश्चात् सेठ बोले–'सारसिका! यदि तू मुझे यह बात पहले बता देती तो मैं तरंग का सगपण पद्मदेव के साथ कर देता।'

'मैं आपको कैसे कहती? तरंग चाहती थी कि ऐसी बात माता-पिता के समक्ष न जाए तो ठीक..... और गत रात्रि में मैंने उसे बहुत समझाया, परन्तु वह इतनी अधीर बन गई थी कि यदि पद्मदेव उसको नहीं मिलते तो वह प्राणत्याग कर देती..... ऐसा उसने निर्णय भी कर लिया था..... मैं उसके अलंकार लेने वहां से चली..... मार्ग में मुझे पिताजी मिल गए और मुझे घर जाना पड़ा.....'

'दोनों किस दिशा में गए हैं, क्या तू जानती है?'

'नहीं, मेरे साथ तो केवल अपने प्रियतम से मिलने जितनी बात ही हुई थी..... वहां पहुंचने के पश्चात् उसने ऐसा साहस करने का निश्चय किया.....'

'ओह! अब क्या किया जाए?' सुनन्दा ने *नि:श्वास* छोड़ते हुए कहा।

सारसिका बोली–'मां! धैर्य रखने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। आप अपने विश्वस्त व्यक्तियों को पद्मदेव की खोज के लिए भेजें····· और यह जाहिर करें कि तरंगलोला मेरे घर रहने आ गई है····· इसके सिवाय मुझे कोई मार्ग नहीं दीखता।'

नगरसेठ ने कहा–'तेरी बात सही है····· परन्तु मुझे धनदेव सेठ के वहां जाना पड़ेगा और आज ही वाग्दान की घोषणा कर धनदेव को सारी बात बतानी पड़ेगी····· तभी कुल का गौरव अखंड रह सकेगा।'

सेठानी ने तत्काल प्रश्न किया–'वाग्दान?'

'हां, यही एक निरापद मार्ग है। यदि दोनों को इसका पता लगेगा तो दोनों जहां कहीं होंगे तत्काल यहां लौट आएंगे··· संभव है पद्मदेव के मित्र विशेष जानते हों और वाग्दान की बात को वे पद्मदेव तक पहुंचा दें'–कह नगरसेठ खड़े हुए।

यह वेदना की बदली कब बिखरेगी? तरंग कब लौटेगी? वह इसी नगरी में है अथवा अन्यत्र?

ऐसे अनेक प्रश्न मां के हृदय को बींध रहे थे।

२१. कुल्माष हस्ती

तरंगलोला और पद्मदेव–दोनों गांव में प्रविष्ट हुए। वे एक संकरी गली से आगे बढ़ रहे थे।

पद्मदेव आगे चल रहा था। उसके पीछे-पीछे तरंगलोला चल रही थी। तरंगलोला के वस्त्र रात्रि-प्रवास के कारण कहीं-कहीं से फट गए थे। किन्तु बंधनमुक्ति के आनन्द से वे आकण्ठमग्न थे····· दोनों रूप-रंग में असाधारण थे। तरंगलोला देवकन्या के सदृश और पद्मदेव देवकुमार जैसा लग रहा था। गांव के स्त्री-पुरुष, बालक और वृद्ध घरों से निकल कर अपने-अपने द्वार पर खड़े इस अद्वितीय जोड़ी को निहार रहे थे। ये कौन होंगे? कहां से आए हैं? इतने रूपवान् होने पर भी नंगे पैर चल रहे हैं? आदि-आदि प्रश्न उनके मन में उभर रहे थे।

दोनों शांतभाव से चलते चले जा रहे थे। निर्भयता में ही देह का दर्द कम पीड़ा देता है। तरंगलोला के पैरों में छोटे-छोटे घाव हो रहे थे। उसके पैर सूज गए थे। पद्मदेव की भी यही दशा थी····· दोनों थके हुए लग रहे थे।

एक वयोवृद्ध किसान सामने मिला। पद्मदेव ने पूछा–'दादा! यहां कोई विश्राम योग्य स्थान है?'

'हां, भाई! आप दूसरे गांववासी से लगते हैं। कुछ दूरी पर एक चौराहा है। वहां राम मंदिर है। उसी के पास छोटी धर्मशाला है····· अच्छा, तो तुम कहां से आ रहे हो?' वृद्ध ने प्रश्न किया?

उत्तर क्या दें? फिर भी पद्मदेव बोला—'बापू! कर्म का भोग सबको भोगना पड़ता है····· जो कुछ हमारे पास था, उसे गंवाकर हम भटकते-भटकते यहां आए हैं।'

'उस धर्मशाला में तुम आराम से विश्राम करना।'

दोनों उस धर्मशाला के पास पहुंचे। उन्होंने देखा, जमीन स्वच्छ थी। तरंगलोला बोली—'स्वामी! स्थल सुंदर और स्वच्छ है। आप कहीं से भोजन ले आएं तो कुछ शान्ति मिले।'

पद्मदेव ने मुस्कराते हुए कहा—'प्रिय! भूख तो मुझे भी लगी है····· परन्तु जब मैं तुम्हारी काया की ओर देखता हूं तो भारी वेदना से भर जाता हूं····· कहां तुम कोमल कली-सी कोमल, कहां वनप्रदेश का प्रवास! प्रिये! तुम्हारे लिए खाद्य-सामग्री कहां से लाऊं? हमारे पास धन नहीं है। एक कौड़ी भी नहीं है। वस्त्र भी पूरे नहीं है। जो कुछ था वह लुट गया है और भोजन के लिए हाथ पसारना मेरे लिए मृत्यु को वरण करने जैसा है। जिनके मन में कुलाभिमान है? वे कभी हाथ नहीं पसारते। वे पुरुषार्थ में विश्वास करते हैं। परन्तु प्रिये! मैं तुम्हारी अकुलाहट देख नहीं सकता। एक नगरसेठ की कन्या भोजन के लिए तरसे! हाय रे विधि! भाग्य की कैसी विडम्बना! प्रिये! मेरे मन में कितना भी कुलाभिमान क्यों न हो, मैं तुम्हारे लिए सब कुछ करने को तैयार हूं। मुझे किसी के घर जाकर भोजन मांगना स्वीकार नहीं है। तुम शांत रहो, अभी मैं इसका प्रबंध करता हूं।'

तरंगलोला स्नेहातुर नयनों से स्वामी को निहारती रही।

पद्मदेव पांथशाला से बाहर निकला। उसने देखा कि आठ-दस अश्वारोही इधर ही चले आ रहे हैं। वह वहीं खड़ा रह गया। ये सभी अश्वारोही रक्षक थे। उनमें एक व्यक्ति नागरिक जैसा लग रहा था। उसके वस्त्र सफेद थे और वह सभी से भिन्न अश्व पर आरूढ़ था। पद्मदेव ने सोचा—'ये कौन होंगे?'

इतने में ही अश्वारोहियों की टोली पांथशाला के अत्यंत निकट आ गई। नागरिक-सा लगने वाले अश्वारोही की दृष्टि पद्मदेव पर पड़ी····· पद्मदेव भी उसको देखकर चौंका····· अश्वारोही ने अपने अश्व को वहीं रोक लिया और फुर्ती से नीचे उतरा····· इतने में ही पद्मदेव भी अपार हर्ष से बोल उठा—'कौन? कुल्माश हस्ती?'

इतने में ही कुल्माश हस्ती आगे बढ़ा और पद्मदेव के चरणों में लुठ गया और संभलकर बोला—'आप यहां? मित्र! भगवान् ने मेरे ऊपर परम कृपा की है।'

दोनों एक-दूसरे के गले मिले और वहीं नीचे बैठ गए। वह बोला—'नगरसेठ के वहां और आपके पिताश्री को प्रातः पता चला। दोनों परिवार आकुल-व्याकुल हो गए····· नगरसेठ आपके पिताश्री से मिलने आए····· सारसिका के द्वारा सारा वृत्तान्त ज्ञात हुआ। नगरसेठ ने अपनी कन्या के वाग्दान की घोषणा की। मुझे

आपकी टोह में भेजा। प्रणाशक नगर की ओर जाने पर भी आपके कोई समाचार प्राप्त नहीं हुए। मैंने सोचा, वनप्रदेश के किसी छोटे गांव में आप रुके हों····· इस प्रकार खोज करते-करते मैं यहां पहुंचा और भाग्यवश आप यहां मिल गए।'

अभी तक कुल्माश की दृष्टि तरंगलोला पर नहीं पड़ी थी। पद्मदेव के इंगित करने पर उसने नगरसेठ की कन्या की ओर देखा और बोला—'देवी! आपकी स्थिति देखते हुए प्रतीत होता है कि आप अत्यंत पीड़ा में है। आपके परिवार वाले आपके विरह में आकुल-व्याकुल हैं। आप शीघ्र मेरे साथ चलें और अपने परिवार से मिलें। आपके पिताश्री ने तथा सेठ धनदेव ने पत्र लिखकर आपको घर लौट आने का आग्रह किया है।'

उसने पत्र पद्मदेव को दिया। पद्मदेव ने पत्र पढ़कर तरंगलोला को दे दिया।

फिर कुल्माश हस्ती दोनों को एक ब्राह्मण के घर ले गया। वहां विशुद्ध भोजन की व्यवस्था हो गई। भोजन आदि से निवृत्त होने के पश्चात् ब्राह्मणी ने तरंगलोला के फटे पैरों पर गाय के घी से मालिश की। दोनों ने काफी विश्राम किया। क्षुधा की शान्ति से समूची थकान काफूर हो गयी।

अपराह्न में कुल्माश हस्ती, सभी रक्षक और ये दोनों प्रणाशक नगर की ओर प्रस्थित हुए। कुल्माश का भवन भी इसी नगरी में था। सांझ के समय सभी वहां पहुंच गए।

कुल्माश ने एक उत्तम कक्ष में दोनों को उतारा। दोनों के लिए उष्ण जल की व्यवस्था की और कुछ सुवर्ण मुद्राएं देकर अपने व्यक्तियों को उत्तम वस्त्र खरीदने भेजा। पद्मदेव और तरंगलोला स्नान आदि से निवृत्त हुए। रात्रिभोजन का प्रत्याख्यान होने के कारण दोनों रात्रि के प्रथम प्रहर में ही निद्राधीन हो गए।

दूसरे दिन कुल्माश हस्ती ने अपने दूत को कौशाम्बी नगरी में भेजकर नगरसेठ और धनदेव सेठ के वहां सारे समाचार कहला दिए। दो-तीन दिन रहकर पद्मदेव और तरंगलोला स्वस्थ हो गए और नए परिधान पहनकर मूल स्थिति में आ गए। उन दोनों के मन में एक शल्य चुभ रहा था कि माता-पिता को बिना कहे, घर से पलायन करने के कारण अब उनको मुंह कैसे दिखाएंगे? दोनों को यह प्रश्न झकझोर रहा था····· परन्तु माता-पिता के दर्द का विचार करते हुए दोनों को यही प्रतीत हो रहा था कि पूर्वजन्म के प्रेमबंधन के आवेशवश हुई भूल माता-पिता के आशीर्वाद से मिट जाएगी।

दो कोस जाने पर पद्मदेव ने रथ रुकवाया और स्वयं घोड़े से उतरकर तरंगलोला के रथ में बैठ गया, क्योंकि रथ में तरंगलोला अकेली थी····· उसके साथ बातचीत करने वाला कोई नहीं था।

सांझ होते-होते वे वैसालिक नगर में आए। वहां पांथशाला में रहकर सूर्यास्त से पूर्व भोजन से निवृत्त होने के लिए बैठे। भोजन के अंत में जलपान

करते-करते कुल्माश हस्ती ने कहा–'मित्र! यहां से केवल दो-तीन खेत जितनी दूरी पर एक विशाल वटवृक्ष है। वह वृक्ष महान् तीर्थस्थल है।'

'तीर्थस्थल!' पद्मदेव ने प्रश्न किया?

'हां, भगवान् महावीर केवलज्ञान से पूर्व यहां आए थे और इसी वटवृक्ष के नीचे वास किया था। इसीलिए इस स्थान को वैसालिक कहा जाता है और गांव का नाम भी वैसालिक पड़ गया है। किंवदंती है कि इस वृक्ष की पूजा के निमित्त देव, दानव, किन्नर, विद्याधर यदा-कदा यहां आते रहते हैं।'

दूसरे दिन सभी उस वटवृक्ष को देखने गए और वृक्ष की विशालता से सभी आश्चर्यचकित रह गए।

फिर सभी ने शालांजना नगरी में विश्राम कर दूसरे दिन कौशाम्बी की ओर प्रस्थान कर दिया।

२२. मंगल विवाह

वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी नगरी!

समृद्ध और सुंदर।

चारों ओर बिखरे उपवन। इन्द्र की अलकापुरी भी इतनी रमणीय होगी या नहीं? यह प्रश्न दर्शक के मन में उभरे बिना नहीं रहता था।

पद्मदेव के माता-पिता, मित्र, मुनीम, दास-दासी कुल्माश हस्ती के संदेश से परम प्रमुदित होकर नगर से डेढ़ कोस की दूरी पर स्थित एक सुंदर उपवन में आकर प्रतीक्षारत थे। इसी प्रकार तरंगलोला के परिवारजन, दास-दासी भी वहीं ठहर गए थे।

दिन का प्रथम प्रहर चल रहा था। एक वृक्ष के नीचे जाजम बिछाकर नगरसेठ और धनदेव सेठ परस्पर बातचीत कर रहे थे। बात ही बात में नगरसेठ बोले–'सेठजी! हमें दो अश्वारोहियों को अगवानी में भेजना चाहिए।'

'हां, मेरा मन भी बहुत विह्वल हो रहा है।' कहकर धनदेव खड़े हुए····· मार्ग की ओर देखा····· वे तत्काल उल्लासभरे स्वरों में बोले–'सेठजी! खड़े होकर देखें, सभी आ रहे हैं। नगरसेठ तत्काल खड़े हुए।'

कुछ दूरी पर बैठी स्त्रियां भी खड़ी हो गईं और सभी मार्ग की ओर देखने लगीं।

सबने रक्षकों सहित रथ को आते देखा।

सभी के हृदय उल्लसित हो गए।

मात्र अर्धघटिका में कुल्माश हस्ती आ पहुंचा····· उसके पीछे-पीछे एक अश्व पर पद्मदेव पहुंचा·····

एकाकी पुत्र! धनदेव और पद्म की माता के नयनों से आंसू बहने लगे।

पद्मदेव अश्व से नीचे उतरा और माता-पिता के चरणों में नत हो गया और गद्‌गद् स्वरों में बोला–'पिताश्री! मेरे से अक्षम्य अपराध हो गया·····'

माता ने पद्म के सिर को चूमा और पिता ने पद्म को छाती से लगाया।

इतने में ही तरंगलोला का रथ भी आ गया।

नगरसेठ, आठों भाई, माता और भाभियों ने रथ को घेर लिया। तरंगलोला रथ से नीचे उतरी। लज्जावश उसने अपना सिर माता के वक्षस्थल में छुपा लिया।

नगरसेठ ने पुत्री के मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा–'बेटी! तूने अपने बाप को अभी तक नहीं पहचाना। तेरी जातिस्मृति की बात मेरे कानों तक पहुंच पाती तो तुझे इतना साहस नहीं करना पड़ता।'

'पिताश्री! मैं अपने अपराध की क्षमा कैसे मांगूं?' कहते-कहते तरंगलोला रो पड़ी।

पिता ने भावभरे स्वरों में कहा–'बेटी! मां-बाप के हृदय संतान के लिए इतने विशाल होते हैं कि कोई उसकी कल्पना ही नहीं कर सकता। किसी प्रकार का क्षोभ मन में मत रखना। सारसिका ने मुझे सारी बात बताई और उसी दिन मैंने वाग्दान तेरे मनोनीत साथी के साथ कर दिया था।'

तरंगलोला के आठों भाई अपनी बहिन के प्रति प्रेमभाव दर्शाने लगे और सभी भाभियों ने अत्यंत आनन्द का भाव प्रदर्शित किया।

अर्धघटिका वहां विश्राम कर सभी विदा हुए।

उसी रात नगरसेठ के भवन पर दोनों परिवार एकत्रित हुए और पद्मदेव ने अपने प्रवास की कथा कही। मात्र एक रात में भोगे परिताप की बात को सुनकर सभी के हृदय वेदना से पीड़ित हो गए।

मृगसिर शुक्ला छठ!

इस मांगलिक दिन में धूमधाम के साथ पद्मदेव और तरंगलोला विवाह-सूत्र में बंध गए।

अपनी एकाकी पुत्री तरंगलोला को नगरसेठ ने बहुत धन दिया····· धनदेव ने नगरसेठ को वचन दिया कि वह अपने पुत्र पद्मदेव को विदेश भ्रमण के लिए नहीं भेजेगा।

सात दिन तक बारात नगरसेठ के अनुरोध पर रुकी रही।

विदाई की वेला!

और जब कन्या को विदाई देने का समय आया तब आनन्द और उल्लास से मुखरित वातावरण करुण बन गया।

एकाकी कन्या····· आठ-आठ भाइयों की एकमात्र बहिन····· कन्या पराये घर की लक्ष्मी होती है, यह सभी जानते थे फिर भी तरंग की भाभियों, माता, भाई और सखियों–सभी के नयन सजल हो गए थे। देवी सुनंदा का दबा रुदन फूट

पड़ा। सभी को यह ख्याल था कि कन्या का ससुराल नगरी में ही है, यह परदेश जाने वाली नहीं है,..... इतना होने पर भी जिसने कन्या को पाला-पोसा हो, नवतरुणी बनाया हो, संस्कारित किया हो, कन्या को अपना अंगरूप माना हो, उस कन्या को विदाई देते समय माता-पिता के हृदय में खलबली पैदा हो, यह सहज है।

रथ में बैठते-बैठते तरंगलोला माता-पिता के चरणों में नत हो गई..... उसके नयनों से अविरल रूप से अश्रुधारा बह रही थी। माता ने कन्या को छाती से लगाकर कहा–'तरंग! ध्यान रखना। उस घर को अपना घर समझना। सास-ससुर सभी की सेवा करना..... सभी के प्रति नम्र रहना, कर्तव्य को विस्मृत मत करना..... अहंकार मत करना..... छोटों की अवहेलना मत करना। आज से तेरे सिर पर दो उत्तरदायित्व का भार आ जाता है-एक तो पितृकुल की कीर्ति को अखंड रखना और दूसरा पतिकुल को अपना बनाना-इन दोनों उत्तरदायित्वों को कुशलतापूर्वक निभाना..... मुझे पूर्ण विश्वास है कि तू अपने कुल का दीपक बनेगी।'

तरंगलोला में बोलने की शक्ति नहीं थी।

भाभियों ने भी ननन्द बाई को गले लगाकर कहा–'बहिन! हम क्या कहें। कहना बहुत चाहती हैं, परन्तु हृदय भर आया है..... ईश्वर तुमको सदा आनन्दमय रखे और तुम सदा प्रसन्न रहो।'

सभी भाई उदास से खड़े थे..... उन्होंने अपनी छोटी बहिन के पीठ पर हाथ फेरते हुए आंसुओं के साथ आशीर्वाद के फूल बिखेरे।

अन्त में तरंग पिताजी से मिली। नगरसेठ ने सजल नयनों से कहा–'तरंग! तू चतुर है, बुद्धिमान भी है। क्या कहूं? एक बात तू सदा याद रखना कि यह सुख, यह वैभव और यह रूप-यौवन अत्यंत चंचल है, अस्थिर है। धर्म ही एक स्थिर है। तू धर्म को कभी मत भूलना। जैसे नमस्कार-महामंत्र से तूने विपत्तियों का पार पा लिया, वैसे ही धर्म में श्रद्धा रखना'–यही मेरा आशीर्वाद है।

इस प्रकार पितृगृह के त्याग के क्षण विषादमय हो गए..... और तरंगलोला अपने स्वामी के पास रथ में बैठ गई।

विविध वाद्य बज उठे।

सारा वातावरण शब्दमय बन गया।

जैसे वधूपक्ष के मनुष्यों के हृदय वेदना से व्यथित हो रहे थे, वैसे ही वरपक्ष के मनुष्य हर्ष से उल्लसित हो रहे थे। धनदेव सेठ को आज अत्यन्त आनन्द का अनुभव हो रहा था..... एक तो खोया पुत्र प्राप्त हो गया था और दूसरे में मानवलोक की लक्ष्मी की वधूरूप में प्राप्ति।

पद्मदेव और तरंग का स्वर्णरथ धनदेव के भवन पर पहुंचा। पद्मदेव की

माता कल्याणी ने नवदंपती को असली मोतियों की बौछार कर वर्धापित किया।

फिर नवदंपती को कुलदेवी के मंदिर में ले गए। वहां कुल परंपरा के अनुसार वर-वधू ने कुलदेवी के समक्ष कुछ क्रियाएं संपन्न कीं।

सायं धनदेव सेठ के यहां भोज का कार्यक्रम था। भोजन-समारंभ से निवृत्त होने के पश्चात् धनदेव सेठ ने सभी को यथायोग्य भेंट देकर विसर्जित किया।

पद्मदेव मित्रों से घिरा बैठा था और तरंगलोला अपने पारिवारिक स्त्रियों से घिरी हुई थी।

रात्रि का पहला प्रहर पूरा हुआ। पद्मदेव की मित्र मंडली जमी बैठी थी। सभी पद्मदेव के साहस की प्रशंसा कर रहे थे। एक मित्र बोला—तुम दोनों को मुक्ति दिलाने वाले रुद्रयश की खोज करनी चाहिए। उसने महान् उपकार किया है····· यदि उसका हृदय करुणामय नहीं हुआ होता तो न जाने तुम दोनों की क्या दशा होती?

पद्मदेव बोला—'मित्र! रुद्रयश को खोजना शक्य नहीं है, क्योंकि वह अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए चला गया है। वह किस दिशा में गया, यह भी ज्ञात नहीं है। उसने कुछ भी नहीं बताया। इसलिए उसे कैसे खोजा जाए? मैंने सुना है कि जब नगरसेठ ने लुटेरों की बात महाराजा को बताई तब महाराजा उदयन ने कहा था कि पद्मदेव को साथ में लेकर लुटेरों के आवास-स्थल को जानना चाहिए और उस पर राज्य का कब्जा होना चाहिए। परन्तु कठिनाई यह है कि गुफानगरी के गुप्तमार्ग को हमने रात्रि में देखा था, अतः उसका स्पष्ट चित्र हमारे मस्तिष्क में नहीं है। यदि रुद्रयश मिल जाए तो यह कार्य सरल हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए मैं रुद्रयश की टोह में दो-चार व्यक्तियों को भेजूंगा।'

पद्मदेव की बात उचित लगी।

रात्रि के दूसरे प्रहर की तीन घटिकाएं बीत चुकी थीं। पद्मदेव की माता ने तरंगलोला को ऊपरी मंजिल में शृंगारित शयनकक्ष में भेज दिया।

फूलों की महक से महकता शयनकक्ष····· एक स्वर्णखचित पर्यंक पर मसृण शय्या बिछी थी····· शय्या पर पचरंगी कौशेय की चादर बिछी हुई थी। पर्यंक के चारों ओर विविध पुष्पों की मालाएं कलात्मक ढ़ंग से योजित थी। लग रहा था मानो वह पुष्पों का परदा हो अथवा पुष्पों से शोभायमान स्नेहिल शय्या।

उसमें दो दिशाओं में दो दीपक झिलमिला रहे थे। उनका मंद-मंद प्रकाश पूरे खंड में बिखर रहा था। एक त्रिपदी पर स्वर्णथाल पड़ा था। पूरे कक्ष को सुरभित करने के लिए अनेक गन्धद्रव्य छिड़के हुए थे।

अभी सभी बातों में मशगूल हो रहे थे। पद्मदेव की मां ने एक-एक कर सबको विदा किया। मां पद्मदेव के खंड में गई। मां को देखते ही पद्मदेव खड़ा हो गया और बोला—'क्यों मां?'

'पद्म! अब सभी को आराम करने दो····· बेचारे दास-दासी अनेक दिवसों से कार्यरत रहने के कारण थक गए हैं।'

मां की बात सुनकर सभी मित्र खड़े हो गए और मां को नमन कर विदा होने लगे।

पद्मदेव जो चाहता था, वह मिल गया।

मां को नमन कर वह भी ऊपरी मंजिल पर शयनगृह में जाने के लिए प्रस्थित हुआ।

तड़फते हृदय! तरसते नयन! हृदय में उभरती अनन्त बातें! यौवन की तृषा! मिलने की आकांक्षा!

ऐसे समय में नर-नारी के हृदय में क्या-क्या होता है। वह तो वे ही जान सकते हैं·····

शयनकक्ष का द्वार खुला था।

पद्मदेव द्वार में प्रविष्ट हुआ।

तरंगलोला के सामने बैठी चारों परिचारिकाएं चौंकी और खड़ी होकर बोलीं—'देव! कोमल कली को संभालपूर्वक रखना····· कहीं कुम्हला न जाए·····'

यह कहकर सभी चली गईं।

पद्मदेव ने शयनकक्ष का द्वार बंद कर दिया।

२३. बारह वर्ष

पद्मदेव आज परम सुख का अनुभव कर रहा था। उसने मन ही मन सोचा—स्वर्गलोक के सुख भोगने वाले देवताओं के पास भी तरंग जैसी सुंदर स्त्री कहां है? मेरे भाग्य सिकंदर थे, इसलिए मुझे यह योग प्राप्त हुआ है। मन में ऐसे विचार करता हुआ पद्मदेव शयनगृह का द्वार बंद कर लज्जा की प्रतिमूर्ति तरंगलोला के निकट गया।

तरंगलोला के अंतर् में विगत भव के वियोग के पश्चात् इस मधुर मिलन की रात्रि का हर्ष था। परन्तु उस समय वह लज्जामणी की लता की भांति संकुचित होकर बैठ गई थी। उसके हृदय में अनेक बातें करने का भाव जागृत था। मिलन के सुमधुर क्षणों को कैसे आनन्दमय बनाया जाए, इसकी कल्पना भी वह कर चुकी थी। स्वामी ज्यों ही खंड में आए तत्काल उनके गले में फूलमाला पहनाकर चरणों में लुठने की बात भी उसने सोच ली थी। परन्तु पद्मदेव को देखते ही वह शर्मिन्दी होकर बैठ गई।

पद्मदेव दो क्षणों तक प्रियतमा के मनोरम वदन की ओर देखता रहा, फिर तत्काल स्वर्णथाल में पड़ी एक पुष्पमाला उठाकर तरंगलोला के गले में डाल दी।

तरंगलोला चौंकी····अरे! जो मुझे पहले करना था, वह स्वामी ने कर डाला···· पद्मदेव पत्नी के निकट बैठ गया। तरंग ज्यों ही पति के चरणों में नत होने लगी, तत्काल पद्मदेव ने उसे दोनों हाथों से उठा लिया और उसको बाहुपाश में जकड़ लिया।

प्रेम तो पूर्वभव से संचित था ही····· युवा हृदय थे····· यौवन की उष्मा छलक रही थी····· मधुर मीठी रात थी····· दोनों के मन में विविध वार्ता करने की तमन्ना थी। और पति-पत्नी की बातें तो अनन्त होती हैं, ऐसा रसकवि कहते हैं। ये बातें कभी पूरी नहीं होती····· प्रतिदिन नए-नए रूपों में उभरती रहती हैं।

प्रिया और प्रियतम।

मानो संसार में दो के सिवाय कोई है ही नहीं, इस तमन्ना के साथ दोनों एक-दूसरे में समा गए।

प्रणय माधुरी····· दोनों में से किसी को ख्याल नहीं रहा कि प्रातःकाल हो गया है।

इस प्रकार दोनों का समय बीतने लगा।

और·····

सारसिका का विवाह इसी नगरी के एक कुलीन नौजवान के साथ हो गया····· वह बार-बार अपनी सखी से मिलने आती। सारसिका के आग्रह के कारण एक दिन पद्मदेव और तरंगलोला–दोनों उसके घर भोजन के लिए गए।

वही दिन प्रेमवश नगर-त्याग का साहसिक दिन था। उसकी स्मृति से सारसिका, उसका पति विमलकुमार, पद्मदेव और तरंगलोला–सभी बहुत हर्षित हुए। इस घटना को बीते एक वर्ष हो गया था। लग रहा था कि यह तो कल की ही घटना है।

सुख की शय्या में सोए हुए मनुष्यों को समय का ख्याल नहीं रहता। आनन्द, विनोद, मस्ती और योग से रहने वाले तरंगलोला और पद्मदेव इस प्रकार जीवन बिता रहे थे, मानो उनका पाणिग्रहण कल ही हुआ हो।

रुद्रयश को खोजने में सफलता नहीं मिली। अनेक प्रयत्न किए, पर सब व्यर्थ।

बारह वर्ष बीत गए।

परन्तु धनदेव और उनकी पत्नी कल्याणी पौत्र का मुंह देखने की तमन्ना लिये समय बिता रही थी। एक दिन कल्याणी ने अपने पुत्र पद्मदेव से कहा–'बेटा! तरंग का आरोग्य तो उत्तम है, फिर भी नगरी के राजवैद्य को बुलाकर जांच करा लेनी चाहिए।'

'आरोग्य उत्तम है तो फिर मां! जांच क्यों?'

'बेटा! नारी का सही सुख और रूप मातृत्व में छुपा होता है। तुम्हारा विवाह हुए बारह वर्ष बीत गए..... नन्हें बालक के कलरव के बिना भवन सूना-सूना सा लगता है। क्या तुझे ऐसा अनुभव नहीं होता?'

पद्मदेव बोला—'मां! यह तो भाग्य का खेल है। फिर भी मैं राजवैद्य को बुला कर जांच करा लूंगा।'

मां प्रसन्न हो गई।

दूसरे दिन.....

राजवैद्य की बात भूलकर पद्मदेव और तरंगलोला दोनों भवन के पीछे के उपवन में जाने लगे। उपवन अत्यंत सुंदर और मनमोहक था। उपवन के द्वार पर जाते ही द्वारपाल ने कहा—'सेठजी! आज उपवन में मुनिवर पधारे हैं।'

'मुनिवर!' पद्मदेव ने आश्चर्य व्यक्त किया।

'हां, सेठजी! वे उपवन के एक अशोक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़े हैं,' माली ने कहा।

'चलें, हम मुनिदर्शन करें।' तरंगलोला ने कहा।

दोनों सचित्त वस्तुएं-पुष्पमालाएं आदि वहीं छोड़कर मुनि के पास पहुंचे..... मुनिश्री ध्यानस्थ थे..... उनके नेत्र अर्ध मुंदे हुए थे..... हाथ सीधे थे..... उनके शरीर पर केवल एक जीर्ण वस्त्र था..... तरंग और पद्मदेव भक्तिभरे नयनों से मुनिश्री को निहारते हुए वहीं खड़े रह गए।

शांतमूर्ति को देख दोनों का हृदय आनन्द से ओत-प्रोत हो गया। शान्त रस टपक रहा हो, ऐसा प्रतीत होने लगा।

लगभग अर्धघटिका के पश्चात् मुनि ने आंखें खोलीं। दोनों ने मस्तक झुकाकर वन्दना की। पद्मदेव ने चरण स्पर्श किया। मुनि ने आशीर्वाद देते हुए कहा—'दोनों मुक्ति प्राप्त करो।'

दोनों ने मुनिश्री को धर्मदेशना देने का आग्रह किया।

मुनि ने धर्मदेशना दी। रत्नत्रयी का महत्त्व समझाया और धर्म उत्कृष्ट मंगल है, सारभूत है, इसकी व्याख्या की।

धर्मदेशना से प्रभावित होकर तरंगलोला बोली—'भगवन्! आपने इस अवस्था में इतने कठोर मार्ग पर चलने का निर्णय क्यों लिया? कैसे लिया?'

मुनि बोले—'भद्रे! कारण के बिना कार्य नहीं होता। यदि मैं यह कहूं कि मेरे त्यागमार्ग के निमित्त आप दोनों हैं तो आपको आश्चर्य होगा।'

दोनों आश्चर्यभरी दृष्टि से मुनि को देखने लगे।

मुनि ने मधुर स्वरों में कहा—'वास्तव में आप दोनों मेरे त्यागमार्ग पर चलने में निमित्त बने हैं, इसको समझाने के लिए मुझे सारी बात कहनी पड़ेगी।'

'बताएं भगवन्! हम यह जानने के लिए अत्यंत उत्सुक हैं,' पद्मदेव ने उल्लासपूर्वक कहा।

मुनि दो क्षण के लिए मौन हो गए।

२४. सर्वत्याग के मार्ग पर

तरंग और पद्मदेव आश्चर्य से अभिभूत थे। वे जान नहीं पा रहे थे कि मुनिश्री के मुनिजीवन के वे निमित्त हैं। वे बार-बार मुनिश्री के तेजस्वी आनन को देख रहे थे।

मुनिश्री ने मौन खोला, बोले—'मुनियों को अपने पूर्व जीवन की स्मृति नहीं करनी चाहिए, परन्तु उपसंहार की दृष्टि से मैं अपने विगत जीवन का वृत्तान्त कह रहा हूं····· आपका आश्चर्य भी उपशांत होगा और मुझे यह भी सही प्रतीत हो जाएगा कि मैंने आपको सही रूप में पहचाना है।'

वर्षों पहले की बात है। विगत जन्म में चंपानगरी के पास एक वनप्रदेश में पारधियों के अनेक परिवार निवास करते थे। सभी परिवार शांति से रह रहे थे। मेरे पिता धनुर्विद्या में पारंगत थे। उनका निशाना कभी व्यर्थ नहीं होता था। हमारा व्यवसाय शिकार, खेती और मस्तीमय जीवन बिताना मात्र था। हम स्वयं अपने राजा थे। हमारे ऊपर किसी का अनुशासन नहीं था। मैं जब युवा हुआ तब माता-पिता—दोनों मृत्यु के ग्रास बन गए। मेरे एक बहिन भी थी। बहिन का विवाह हो गया। मैं अकेला अपनी झोंपड़ी में अपने ढ़ंग से मस्तीभरा जीवन जी रहा था। मैं भी पिता की तरह निशानेबाज हुआ। पुण्य-पाप जैसी चर्चाएं हम नहीं करते थे। हम केवल ग्रामदेवता के प्रति श्रद्धा रखते थे। एक बार हमारे मुखिया की कन्या का विवाह महोत्सव हुआ। उसमें बल परीक्षण की मुख्य शर्त थी। एक पूनम की रात में बल परीक्षण की प्रतिस्पर्धा हुई····· मैं विजयी हुआ····· मुखिया की कन्या वासरी के साथ मेरा विवाह हो गया। हमारा संसार चलने लगा। लग्न की पहली रजनी में मैंने पत्नी वासरी को हाथीदांत देने का वचन दिया। एक दिन उसको प्राप्त करने निकला। गंगा के तट पर सरोवर में हाथी जलक्रीड़ा करने आया। मैंने उल्लासभरे भावों से हाथी को निशाना बना बाण छोड़ा। निशाना चूक गया। वह बाण एक चक्रवाक को लगा और वह लहूलुहान होकर धरती पर आ गिरा। चक्रवाक को इस स्थिति में देखकर चक्रवाकी ने वेदनाभरा क्रन्दन किया। वह मैं देख नहीं सका। मैंने जीवन में अनेक शिकार किए थे। शिकार के नियमों का पालन भी मैं करता था। प्रेम दीवाने जोड़े में से किसी को मारना नियम विरुद्ध था। मेरे से यह अपराध हो गया। मेरा हृदय रोने लगा। चक्रवाकी की करुण दशा और वेदनाभरे रुदन को सुनकर मेरा हृदय चूर-चूर हो गया। मैंने चिता जलाकर चक्रवाक की दाहक्रिया की। चक्रवाकी प्रियतम को अकेले जलते देख, वह भी

उसी चिता में कूद पड़ी। मेरा हृदय रो पड़ा। अब मैं वहां अकेला था। मैं भी उसी जलती चिता में कूद पड़ा और जलकर राख हो गया।

वहां से मरकर मैं वाराणसी के महापंडित के घर में पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ और मेरा नाम रखा रुद्रयश..... मुनि दो क्षण मौन रहे। पद्मदेव और तरंगलोला अपने पूर्वभव से गूंथी हुई इस वार्ता को सुनने में तन्मय हो रहे थे। मुनि ने आगे कहा—'मैं अपने पैतृक संस्कारों को तिलांजलि देकर चोरों के गिरोहों में जा मिला। मैं उस दस्यु टोली का नायक बना और न जाने क्या-क्या अत्याचार किए..... शराब, मांस और व्यभिचार मेरे दैनंदिन के व्यवहार थे। एक दिन गंगा के किनारे मैंने आप दोनों को देखा। आप दोनों एक-दूसरे में ओतप्रोत थे। मैंने अपने साथियों के साथ तुमको घेर लिया और सारे अलंकार छीनकर तुम दोनों को सरदार के पास ले आया।'

'श्रेष्ठिपुत्र! अब सारा वृत्तान्त तुमको याद आ रहा है, ऐसा प्रतीत हो रहा है। परन्तु एक बात मुझे कहनी है कि तुम दोनों मेरे इस त्याग मार्ग के निमित्त कैसे बने? मैंने श्रेष्ठिपुत्र को एक खंभे से बांध दिया था और तरंगलोला वहां एकत्रित स्त्रियों को अपने पूर्वभव की कथा कह रही थी। उस वृत्तान्त को सुनकर मुझे जातिस्मृति ज्ञान हुआ। पारधी के भव में मेरे हाथों हुए भयंकर अपराध की स्मृति हो आई। इस भव में पुनः ऐसा अपराध न हो, मुझे नारकीय यातनाएं न भोगनी पड़े—यह भावना मेरे हृदय में उभरी और तब मैं आप दोनों को सही-सलामत वनप्रदेश से बाहर ले आया..... मैंने निश्चय कर लिया था कि मुझे पापकर्म का सघन प्रायश्चित्त करना है..... और मुझे सुयोग मिला..... आचार्य भगवान् के दर्शन हुए और मैंने अपनी सारी बात उन्हें बताकर उनके पास दीक्षित हो गया..... उसके पश्चात् मैंने आगम अध्ययन में अपनी वृत्तियों को लगा दिया। ग्यारह वर्षों तक गुरु की सन्निधि में रहकर ज्ञानाभ्यास किया..... गुरु ने मुझे एकाकी विहार की आज्ञा दी..... यह आज्ञा गीतार्थ होने के बाद ही प्राप्त होती है..... मेरा अहोभाग्य था कि मुझे आज्ञा मिल गई..... आकस्मिक ढ़ंग से मैं यहां आ पहुंचा और मेरे उपकारी आप दोनों यहीं मिल गए। मैं आत्मसंयम से अपने कल्याण-मार्ग में आनन्दपूर्वक रह रहा हूं और इस अनुत्तर धर्म का उपदेश देता हूं।'

मुनि की जीवनकथा सुनकर दोनों विचारमग्न हो गए..... उनके नयन सजल हो गए..... उनके मन में यही विचार आ रहा था कि एक समय यह विषरूप लुटेरा आज अमृतमय बन गया है और अपने कृत दोषों के निवारण के लिए स्वयं मोक्षमार्ग में पुरुषार्थ कर रहा है। धन्य है इसके जीवन को! धन्य है इसके पुरुषार्थ को और धन्य है इसकी आलोचनावृत्ति को.....

तरंगलोला ने प्रश्नायित दृष्टि से पद्मदेव की ओर देखा..... पद्मदेव प्रियतमा की आंखों में उभरे भाव को जान गया। तरंगलोला की आंखें कह रही

थीं–'प्रियतम! संसार का स्वरूप कितना भयंकर है।'

पद्मदेव ने पत्नी का भाव समझकर मुनिश्री से कहा–'जैसे आपने अपना मार्ग चुना है, वैसे ही हमें भी कल्याण का मार्ग बताएं। आज हमने संसार का स्वरूप यथार्थ में जान लिया है। आप हमें इस संसार-अटवी से उबार लें।'

'भाई! अति कठिन कार्य है। स्नेह, ममता, प्रेम, सुख-संपत्ति–इन सबका त्याग करना छोटी बात नहीं है। त्याग और तप के बिना इस इन्द्रजाल से नहीं बचा जा सकता।' मुनि ने कहा।

'मुनिवर! हम तैयार हैं'–पद्मदेव और तरंगलोला दोनों बोल पड़े।

मुनिश्री बोले–'भव्यात्मन्! ये विचार उत्तम हैं। इनके बिना संसार से निस्तार असंभव है। रोग, शोक, दुःख, भय, क्लेश, जन्म-मृत्यु, वृद्धावस्था आदि से बचाव संयम की साधना से ही हो सकता है। ऐसे तो तुम अनन्त भवों से संसार में परिभ्रमण कर रहे हो····· उनको छोड़ें····· अभी के दो भवों पर विचार करें तो समझ में आएगा कि संसार कितना असार है, प्रेम, सुख या मोह अनन्त संसार का ही सूचक है। जब तक शरीर स्वस्थ हो, शक्ति हो तब तक संयम की आराधना की जा सकती है। तुम दोनों स्वस्थ हो, शक्ति संपन्न हो। यही अवसर है–सर्वत्याग का।'

'महात्मन्! आपकी वाणी हमारे रग-रग में घर कर गई है। हम चाहते हैं आपका अनुसरण करना, सर्वत्याग के मार्ग पर चलना। आप हमें पथ-दर्शन दें।'

'जैसा चाहो वैसा करो' मुनि ने कहा।

पद्मदेव ने तत्काल माली को बुलाया और कहा–'भाई! तू भवन में जा और मेरे माता-पिता को बता दे कि हम दोनों ने सर्वत्याग के मार्ग पर चलने का निश्चय कर लिया है। नगरसेठ के भवन पर भी यह समाचार तत्काल दे देना।'

माली दो क्षण के लिए अवाक् बन गया और दर्दभरे हृदय से भवन की ओर दौड़ा।

पद्मदेव और तरंगलोला–दोनों अपने शरीर के आभूषण उतारने लगे।

मुनिश्री बोले–'आत्मन्! पूरा विचार कर लें। यह मार्ग जीवनपर्यंत का मार्ग है। सावधिक नहीं है। मोह-ममता को छोड़ना सरल नहीं है। पूरी तैयारी हो तो इस मार्ग को अपनाना।'

दोनों ने सहर्ष स्वीकृति दी।

इतने में ही माता-पिता और दास-दासी सभी आ गए।

सभी ने पद्मदेव और तरंगलोला को समझाने का आक्रन्दनभरा प्रयत्न किया। परन्तु वे दोनों अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए। दोनों ने वहीं अपने हाथों लुंचन कर लिया। अब उनका मुंडित मस्तक सूर्य की किरणों से चमक रहा था। दोनों के सिर पर रक्त के बिन्दु उभर आए।

माता कल्याणी जोर-जोर से चिल्ला रही थी। उसी समय नगरसेठ पूरे परिवार के साथ वहां आ पहुंचा। तरंगलोला को उस स्थिति में देख सभी रो पड़े। सारा वातावरण रुदनमय हो गया। दास-दासी, भाई-भौजाई, मां-बाप–सभी की आंखों से अजस्र अश्रुप्रवाह बह रहा था। सभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ थे। केवल दो व्यक्ति ही आनन्द वदन लिये खड़े थे–पद्मदेव और तरंगलोला।

नगरसेठ ने मुनिश्री को वन्दना की और फिर तरंग से बोला–'तरंग! तुम दोनों ने जो निश्चय किया है, उसका मैं विरोध नहीं करता, क्योंकि वह मार्ग उत्तम है। मैं स्वयं संसार के कीचड़ में फंसा हुआ हूं····· उसको त्यागने की मेरी शक्ति नहीं है····· परन्तु तुम्हारी भावना देखकर मैं स्वयं को धन्य मानता हूं। सर्वत्याग का मार्ग कंटीला है, विपत्तियों से भरा पड़ा है। उन सबको सहने की क्षमता वाला पुरुष ही इसे स्वीकार कर सकता है। तुम धन्य हो, तुम्हारा मार्ग शुभ हो, कल्याणमय हो।'

माता, भाई, भाभी सभी सुबक-सुबक कर रो रहे थे।

पद्मदेव और तरंगलोला–दोनों ने सभी को संसार के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया और अन्त में सर्वत्यागमय मार्ग के अनुसरण में पुरुषार्थ करने की प्रेरणा दी।

पद्मदेव ने सबको बताया कि ये मुनीश्वर ही लुटेरे रुद्रयश हैं, जिन्होंने मुझे और तरंग को लुटेरों से बचाकर मुक्त किया था और स्वयं मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर हो गए हैं।

सभी मुनीश्वर की ओर देखने लगे।

नगरी में ये समाचार वायुवेग से प्रसृत हो गए। नर-नारी के समूह उस उपवन में आने लगे। नगरी के एक उपाश्रय में भगवान महावीर की शिष्या थीं····· वे भी उपवन में आ पहुंचीं।

लोगों ने इस त्याग की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

सारसिका भी अपने तीनों बालकों के साथ वहां आ पहुंची। उसके नयन श्रावण-भाद्रपद बरसा रहे थे। और····· मध्याह्न से पूर्व इस उपवन में एक महान् उत्सव जैसा हो गया।

दीक्षा संपन्न हो गई। तरंगलोला साध्वीश्री के साथ नगर के उपाश्रय में चली गई और पद्मदेव मुनिश्री के साथ अन्यत्र विहार कर गए।

आगममनीषी मुनि दुलहराजजी के रूपान्तरित उपन्यास

- आर्य स्थूलभद्र और कोशा
- महाबल मलयासुन्दरी
- वीर विक्रमादित्य
- नल दमयन्ती
- पूर्वभव का अनुराग
- वैर का अनुबंध
- चित्रलेखा
- अलबेली आम्रपाली
- बन्धन टूटे
- तापसकन्या ऋषिदत्ता

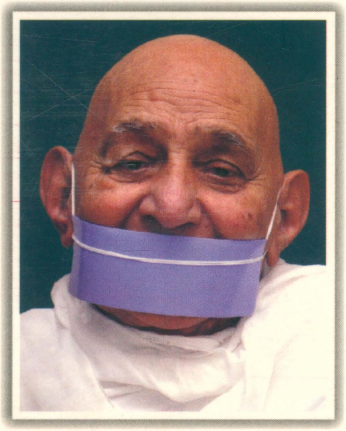

आगममनीषी मुनि दुलहराज

जीवन परिचय

जन्म	:	१४ जुलाई १९२२, कोलार गोल्ड फील्ड (कर्नाटक)
दीक्षा	:	२५ अक्टूबर १९४८, छापर (राज.)
शिक्षानिकाय	:	८ फरवरी १९६६, डाबड़ी (राज.)
साझपति	:	२९ अक्टूबर १९८१, अणुव्रत विहार, दिल्ली
आगममनीषी	:	२७ जनवरी २००४, जलगांव (महाराष्ट्र)
बहुश्रुत परिषद् सदस्य	:	१६ सितम्बर २०१०, सरदारशहर (राजस्थान)
चिरप्रयाण	:	१९ जनवरी २०११, श्रीडूंगरगढ़ (राजस्थान)
विशेष	:	दीक्षा दिन से निरन्तर आचार्य महाप्रज्ञ की सेवा में रहे। आगम-शोध कार्य में प्रारम्भ से ही संलग्न। आचार्य महाप्रज्ञ के शताधिक पुस्तकों के सम्पादक। तेरापंथ धर्मसंघ में प्रथम अंग्रेजी के ज्ञाता। हिन्दी-संस्कृत-प्राकृत-गुजराती-कन्नड़ आदि भाषाओं के प्रतिभासंपन्न विद्वान्। शतावधानी, साहित्यकार, चिन्तक, वक्ता, कविचेता और लेखनी के धनी। सुदूर यात्राओं में अविरल सहयात्री।

ISBN 81-7195-179-1

₹ 60/-